प्यारे राजा बेटा

[पहला भाग]

लेखक

रिषभदास रांका

सम्पादक

जमनालाल जैन,
साहित्य-रत्न

श्री भारत जैन महामण्डल, वर्धा

समर्पित

जिसने अपनी मृत्यु से दैहिक मुक्ति
पा विश्वात्मा प्रति साम्यभाव
को जाग्रत कर अपने पिता
को मोह मुक्त होने का
सबक दिया

अनुक्रमणिका

अपनी ओर से

[प्रथम संस्करण से]

आदमी जन्म लेता है और मृत्यु की महा-गोद में सो जाता है। सृष्टि में यह सदा से होता आया है। लेकिन घटनाएँ हैं कि उनका इतिहास बनता है, स्मृतियाँ चलती हैं। महापुरुषों, ज्ञानियों और सन्तों ने इसे जीवन कहा है, अमरता कहा है। प्रस्तुत रचना का भी एक घटनात्मक इतिहास है, जिसका प्रारंभ आनन्द और उत्साह-प्रद रहा।

सन् '४२-४३ में जब श्री० रांकाजी जेल में थे और उन्हें ज्ञात हुआ कि राजेंद्र को कहानियाँ सुनने, सीखने का शौक है, तब उन्होंने वहाँ पर पूज्य विनोबाजी और श्रद्धेय काका साहब कालेलकर आदि विज्ञों से चर्चा की। उन्होंने कहा, बालकों को ऐसा ही साहित्य पढ़ने को देना चाहिए जिससे वे सहज रूप से इतिहास, भूगोल, धर्म, विज्ञान आदि विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। अतः लेखक के मन में कल्पना उत्पन्न हुई और परिणाम में ये पत्र-कथाएँ लिखी गईं, जिनकी संख्या करीब ५० होगी। पत्र आत्मीय भाव से, सहज सुगमता से और सरल भाषा में लिखे होने से भीतर तक प्रविष्ट हो जाते हैं। पत्र हृदय की वस्तु होते हैं। इन कहानियों का प्रारंभ 'प्यारे राजा बेटा' से हुआ और अन्त 'रिषभदास के प्यार' में।

यों तो अब तक विविध लेखकों ने नैतिक और मनोवैज्ञानिक विकास की दृष्टि से अनेक कहानियाँ लिखी हैं; फिर भी विश्व के महापुरुषों की कथाओं के प्रति सहज विश्वास और आकर्षण के साथ, बालकों में उनके

प्रति जिज्ञासा, आदर और श्रद्धा उत्पन्न हो, इसलिए इन कहानियों में उन महापुरुषों की मानवोचित श्रेष्ठता को ध्यान में रखते हुए प्रयत्न किया गया है कि बालकों पर काल-गत या देश-गत धार्मिक या साम्प्रदायिक अंध-विश्वास, कट्टरता, द्वेष अथवा ऐसा ही कोई विकारी भाव मन में न जमने पाये। अचरज भरी धार्मिक, लोकोत्तर घटनाओं से भरी कथाओं के कारण हमारे महा-पुरुष मनुष्य के स्वाभाविक रूपसे दूर पड़ते गए हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग उनके अस्तित्त्व में ही अविश्वास करने लगे। अतः उन महा-पुरुषों के प्रति सहज समभावी वृत्ति और आदर बढ़े, और इससे बालकों का नैतिकता की ओर झुकाव हो, यह ध्यान में रखा गया है। जहाँ तक हमारा खयाल है, कहानियाँ इन उद्देश्य में प्रायः सफल हैं।

इस संग्रह में पन्द्रह कहानियाँ हैं। कुछ कहानियाँ बाद में लिखी हुई हैं। सोचा गया कि विभागानुसार संग्रह प्रकाशित किए जायँ तो पाठकों को एक धारा या श्रेणी की विविध बातें एक ही संग्रह में मिल सकेंगी। इसीलिये बाद की होने पर भी, उपयोगी समझकर कुछ महापुरुषों जैसे—सम्राट् कुमारपाल, देशभक्त भामाशाह आदि की कहानियाँ संग्रह में दी गई हैं। जो कहानियाँ जेल से नहीं लिखी गई, वे उसे सुना दी गई थीं क्योंकि घर पर प्रार्थना के बाद कहानी सुनने-सुनाने की परम्परा चल पड़ी थी। '१५ अगस्त' की चर्चा भी, कहानी न होते हुए, बालकोपयोगी समझकर देना उचित जँचा।

मुझे इनके सम्पादन का अवसर मिला, इससे आनन्द तो हुआ लेकिन चिन्ता भी कम नहीं रही। जो त्रुटियाँ रही हों, पाठक उन्हें मेरी समझें और उनके निवारणका अवसर दें। प्रकाशन की दिशा में प्रेरक और मार्ग दर्शक विज्ञ तथा श्रद्धास्पद गुरु-जनों के हम कृतज्ञ हैं। वस्तुतः भदन्त आनन्द कौसल्यायनजी की प्रेरणा से ही ये कहानियाँ प्रकाश में आ सकी

हैं। उनके प्रति शाब्दिक कृतज्ञता व्यक्त कर हम छुट्टी नहीं पाना चाहते। पूज्य विनोबाजी के आशीर्वाद और अमूल्य सुझावों के प्रति भी हम अत्यन्त अनुगृहीत हैं। उनके सुझावों का दूसरे संस्करण और संग्रहों में पूरा ध्यान रखा जायगा।

पाठकों ने इन्हें अपनाया और उपयोगी समझा, तो लेखक और सम्पादक अपने को सफल समझेंगे।

वर्धा,
२३ : ७ : '४९

—सम्पादक

यह दूसरा संस्करण—

इस अल्पावधि में इसके दूसरे संस्करण का निकलना इस बातका प्रमाण है कि पाठकों ने इसे पसन्द किया है।

दृष्टि-दोष तथा संस्कार-दोष से प्रथम संस्करण में विचार और भाषा विषयक जो त्रुटियाँ रह गई थीं उनपर हाथ फेरने का पूरा प्रयत्न किया गया है और ध्यान रखा गया कि पुस्तक शुद्ध तथा असाम्प्रदायिक बने। इस सम्बंध में भदन्त आनन्द कौसल्यायनजी तथा विनोबाजी के हम विशेष ऋणी हैं। कहानियोंके क्रम में परिवर्तन करने में कुछ तो बालकों की सुविधा का खयाल रहा और कुछ यह अपनी रुचि की चीज़ रही।

इस संस्करण में तुलसीदास, कबीरदास, बनारसीदास, रहीम, बुध-जन आदि हिन्दी कवियों के नीतिप्रद कुछ सुभाषित भी कहानियों के अन्त में दे दिये हैं। ये दोहे भाषा की दृष्टि से बालकों को समझने में थोड़े कठिन तो जरूर होंगे, किन्तु वे सुभाषित यदि बाल्यावस्था में ही कण्ठस्थ

कर लिए जायँ तो जीवन-व्यवहार में आगे जाकर ये नीति की बातें अच्छा मार्ग-दर्शन करती हैं। जीवन को दृढ़, प्रामाणिक और कुशल बनाने में इन सुभाषितों का बड़ा मूल्य है।

मुख-पृष्ठ का चित्र श्री० ए० जी० नन्दनवार ने बनाया है। उनका हमें 'आभार' मानना तो चाहिए ही, किन्तु यह 'धृष्टता' करने में हम असमर्थ हैं।

जिन विज्ञ मित्रों, पत्रकारों और पाठकों ने अपने अमूल्य अभिप्राय और सुझाव दिए हैं, उनके हम अत्यन्त आभारी हैं। उनके उत्साह का ही परिणाम है कि 'प्यारे राजा बेटा' का दूसरा भाग भी १५ मार्च, ५० तक प्रकाशित होकर पाठकों तक पहुँच सकेगा।

हमारी अभिलाषा है कि कम-से-कम मूल्य में अधिक-से-अधिक उत्तम साहित्य दिया जाय। पहले संस्करण में इस पुस्तक का मूल्य १।) रखा गया था, किन्तु अब घटाकर दस आने कर दिया है।

आशा है पाठक हमारे प्रयत्न का यथोचित स्वागत कर उत्साह बढ़ावेंगे ताकि कुछ नई भेंट लेकर हम उपस्थित हो सकें।

गांधीचौक, वर्धा,
२३ : २ : '५०

—सम्पादक

दो शब्द

'प्यारे राजा बेटा' के सम्बन्ध में कुछ लिखना सहज नहीं है। यह न कोई कहानी-संग्रह है न पुस्तक है, किन्तु एक विचारवान् पिता द्वारा किया गया 'प्यारे राजा बेटा' का श्राद्ध है।

ऋषभदासजी जिस समय जेल में थे, तो 'राजेन्द्र' को समय-समय पर पत्र लिखते रहते थे। वे पत्र राजेन्द्र के लिए थे, और केवल राजेन्द्र के लिये। कौन जानता था कि एक दिन 'राजेन्द्र' के लिये लिखे गये ये पत्र 'राजेन्द्र' की आयु और रुचि के सभी बालकों की सम्पत्ति होकर रहेंगे।

पत्रों की संख्या अधिक नहीं है—केवल पन्द्रह है। किन्तु इन पन्द्रह ही पत्रों में एक बालक के लिये 'देश' और 'काल' की दृष्टि से जितनी व्यापकता समा सकती है, समाई हुई है। देशों की दृष्टि से इसमें भारत, चीन, ग्रीस, अरब, अमरीका सभी देशों का प्रतिनिधित्त्व है और काल के हिसाब से इसमें भगवान् बुद्ध और महावीर से लेकर १५ अगस्त तक का समावेश हो गया है।

ऐसे पत्र किसी भी बालक के दृष्टिकोण को व्यापक बनायेंगे ही। 'दो दोस्त' शीर्षक पत्र राजेन्द्र की आयु से थोड़ी अधिक आयु के बालकों के अनुरूप जँचा। यूं कथा आदर्श प्रधान है ही।

पत्रों में जिन महापुरुषों के चरित्रों का परिचय दिया गया है, उनके चुनाव और चरित्र-चित्रण द्वारा ऋषभदासजी की उदार सर्वधर्म समभावी भावना ने अनायास ही अपना परिचय दे दिया है। वह उत्तरोत्तर बढ़ती रहे---यही कामना है।

पत्रों की भाषा ऐसी ही है जैसी ऋषभदासजी राजेन्द्र से बोलते रहे हैं। यही इन पत्रों का भाषा सम्बन्धी सद्गुण है। किन्तु, क्योंकि अब तो ये पत्र दूसरे बालकों—जिन्हें ऋषभदासजी राजेन्द्र का ही रूप मानने लगे हैं—के लिये हैं, इसलिये अच्छा होगा कि पुस्तक के दूसरे संस्करण में भाषा को जहाँ-तहाँ थोड़ा हाथ लगा दिया जाय।

बालकों के हाथों में जो साहित्य पड़े वह हर दृष्टि से सर्वथा निर्दोष होना चाहिये।

आशा है बालक और सभी बाल-हितैषी अभिभावक-गण इस पुस्तक को अपना कर ऋषभदासजी रांका को और भी बाल-हितैषी साहित्य प्रकाशित करने के लिए उत्साहित करेंगे।

रोहित-कुटी, वर्धा
२५-७-४१

(भदन्त) आनन्द कौसल्यायन

राजेन्द्रकुमार रांका
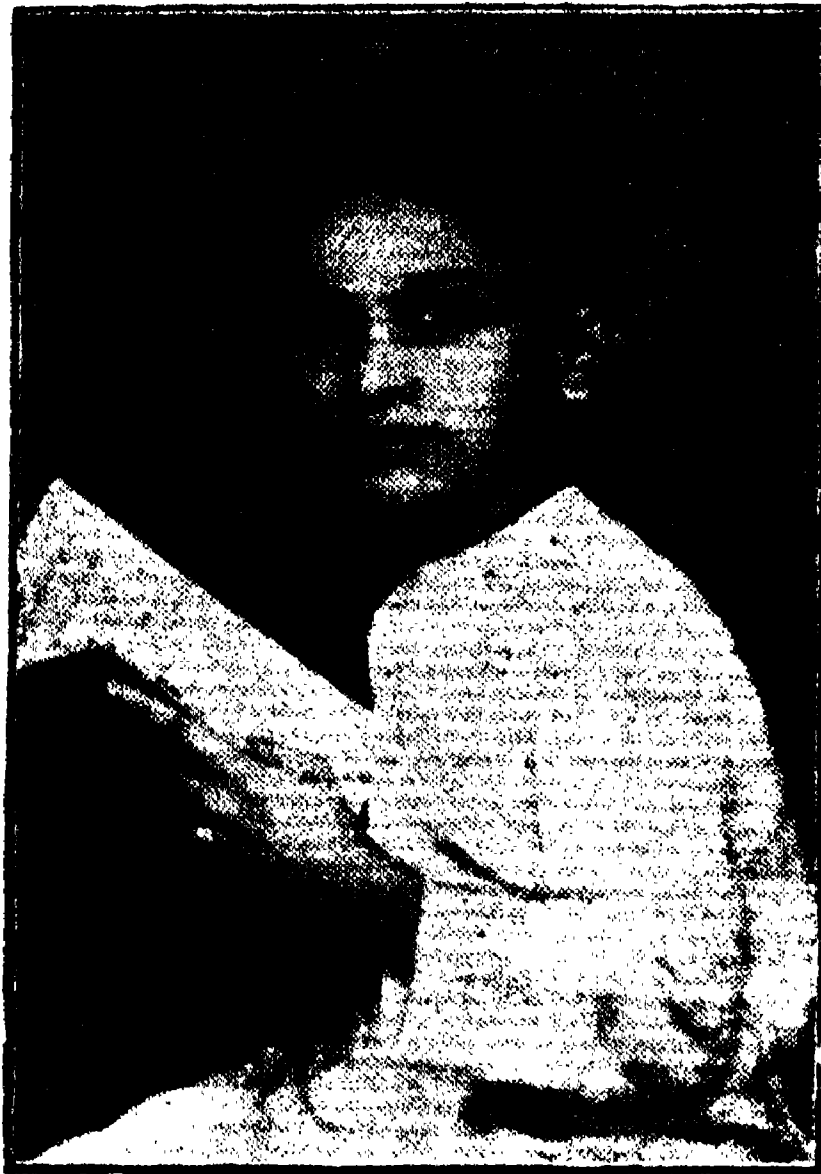
जन्म	मृत्यु
७ मार्च १९४०	१ सितम्बर १९४८

स्वर्गीय राजेन्द्र

'होनहार बिरवान के, होत चीकने पात' यह लोकोक्ति बड़ी तथ्य-पूर्ण है। शास्त्र-पुराणों और ऐतिहासिक घटनाओं में इसकी यथार्थता का दर्शन होता है। स्व० राजेन्द्र भी ऐसा ही बालक था। ध्रुव, प्रल्हाद तथा अन्य भक्त बालकों की कथाएँ सहस्रों-लाखों वर्षों के व्यवधान से श्रद्धा और भक्ति की चीजें रह गईं, ताजा और प्रत्यक्ष होतीं तो वे भी कुतूहल पैदा करतीं। लेकिन आत्मा बहुत बड़ी चीज़ है। वह समय और स्थिति की सीमाओं या बाधाओं से अतीत है! प्रगति-पथ पर अग्रसर आत्मा शरीर में रहती तो है, उससे चिपट नहीं जाती। एक नहीं, दूसरे, इस प्रकार वह अपनी क्रमागत प्रगति के लिए नूतन देह भी धारण कर लेती है और कार्य पूरा होने पर देह से भी अतीत हो 'परम' तक पहुँच जाती है। शायद स्व० राजेन्द्र को भी हम इसी श्रेणी में रख सकें।

राजेन्द्र का जन्म ७ मार्च सन् १९४० को जलगाँव (पू.खा.) में हुआ। जन्म लेते ही, उसके पिता, श्री० रिषभदास रांका के घर में सुख-समृद्धि बढ़ने लगी। एक विशेष आनन्द और मानसिक शान्ति का वातावरण घर में निर्माण हो गया। पिता के जीवन पर कांग्रेस अथवा गांधी विचार-धारा का प्रभाव तो था ही, परम्परागत धार्मिक संस्कार भी जीवन-शोधन में सहायक रहे। सेठ जमनालालजी

बजाज की प्रेरणा से, अब यह रांका-परिवार वर्धा आ गया। पिता गो-सेवा संघ में अपनी सेवा देने लगे।

बजाजवाड़ी (वर्धा) के संयत और धार्मिक वातावरण तथा राष्ट्र-नेताओं के दर्शन-आशीर्वाद से राजेन्द्र के विकास में बड़ी सहायता मिली। वह तीन वर्ष की आयु में बाल-मंदिर जाने लगा था।

राजेन्द्र साढ़े-तीन साल का हुआ ही था कि सन्'४२ के अगस्त में उसके पिता कृष्ण-मंदिर भेज दिये गए। १६ मास तक वह प्रत्यक्षतः पिता की संगति से दूर रहा, लेकिन परोक्ष रूप से पिता के प्रबुद्ध-प्यार ने राजेन्द्र को 'साधारणता' से बहुत ऊँचा उठा दिया।

घर में प्रतिदिन सुबह-शाम प्रार्थनाएँ होती रहती थीं। राजेन्द्र पर इन प्रार्थनाओं और भजनों का पर्याप्त असर हुआ। वह अपनी माँ की गोद में भजन सुनते-सुनते लेट जाता। उसे 'दीनन दुख हरन देव सन्तन हितकारी', 'वैष्णव जन तो तेणे कहिये', और 'प्राणी तू हरिसौं डर रे' भजन तथा राष्ट्रीय-गानों में 'जन-मन-गण' गान बहुत प्रिय था।

जेल में पिता को जब मालूम हुआ कि राजेन्द्र को कहानियाँ सुनने का शौक है, तब वे समय-समय पर कथा-पत्र उसके नाम से भेजते रहे, जिन्हें उसकी बड़ी बहन सुनाया करती। सुनते-सुनते उसे रामायण और महाभारत के प्रमुख पात्रों की कथाएँ मालूम हो गईं और बार-बार उनका स्मरण किया करता। कहानियाँ सुनते-

सुनते उसकी जिज्ञासा स्वयं पढ़ने की हुई, तो बड़े अक्षरों में छपी कहानियाँ पढ़ने लगा। उसकी इस रुचि और विकास को देख कर माता-पिता का हृदय सहज प्रसन्नता से व्याप्त हो उठा। पहला पत्र जॉर्ज वॉशिंग्टन सम्बन्धी था।

पाँचवें वर्ष में उसे पढ़ाने के लिए ऐसे शिक्षक की नियुक्ति की गई जो उसे कहानियों द्वारा, पर्यटन द्वारा सामान्य ज्ञान करा सकें। ज्ञान भार-रूप न हो, यह ध्यान रखा गया। यह उसकी पढ़ाई का व्यवस्थित प्रारम्भ था। पाठशाला में वह सातवें वर्ष में गया और तीसरी कक्षा में प्रविष्ट हुआ। परीक्षा में, अस्सी बालकों में सर्व प्रथम आया! 'कल्याण' मासिक के अंकों और विशेषांकों के चित्रों ने उसके धार्मिक संस्कारों को जाग्रत करने में मदद की। उसने अपने कमरे में एक मूर्ति को सिंदूर लगा कर प्रतिष्ठित कर लिया और नियमित रूपसे उसकी पूजा किया करता था। माता-पिता उसकी स्वतन्त्र भावना, जिज्ञासा और प्रवृत्ति में व्याघात डालना उचित नहीं समझते थे। यही कारण है कि जितनी भक्ति उस में पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी के प्रति थी, उतनी ही शिव, विष्णु, बुद्ध और ईसा आदि के भी प्रति। ऐसे चित्र प्रायः वह अपनी पुस्तकों में भी रखता।

पू० विनोबाजी ने उसे अपनी 'गीताई' (गीता का मराठी पद्यानुवाद) प्रदान की। वह उसे बराबर पढ़ता था। विधायक कार्य-कर्ताओं की परिषद के समय एक बार पं० जवाहरलालजी नेहरू ने उसके सिरपर प्यार भरा हाथ फेरा तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। बजाज-

बाड़ी के वातावरण में उसने महात्माजी, पू० राजेन्द्र बाबू, राजाजी, वल्लभभाई पटेल आदि बहुत से राष्ट्र-सेवकों के दर्शन किए थे। ऐसे समय वह बड़े सहज भाव से रहता। इस तरह वह निस्संकोची हो गया था।

वह उद्दण्ड और गंदे विद्यार्थियों की संगति में नहीं रहा। उसके चाचा ने पूछा, तो कह दिया कि "मैं ऐसे लड़कों के साथ नहीं खेलूँगा जो गन्दे रहते हैं और गालियाँ बकते रहते हैं।" उसकी मित्रता अच्छे और संस्कारी बालकों से थी और उन्हें पत्र भी लिखता था।

उसके पिता ने समझा दिया था कि बाजार या हॉटेल की चीजें नहीं खानी चाहिए। एक बार ऐसा ही मौका आ गया। उसके पिता अपने दो-एक मित्रों के साथ नागपुर गये हुए थे। उससे बहुत आग्रह किया गया, किन्तु उसने हॉटेल की कोई वस्तु नहीं खाई। इसी तरह पटाखे, आदि भी वह नहीं उड़ाता था।

एक बार महारोगी सेवा मण्डल के व्यवस्थापक श्री मनोहरजी ने उसके पिता से कोढ़ के संसर्ग आदि पर कुछ चर्चा की थी। उसे वह समझ गया और मौका आनेपर एक सज्जन से उसने मोटर से उतरते ही कह दिया कि अपने बच्चों को नंगे पैर अन्दर मत ले चलिए। उसकी अवस्था-गत इस समझदारी पर सब अचरज करने लगे।

माता-पिता पर उसकी असीम भक्ति थी। उनकी आज्ञा के बिना वह कोई काम नहीं करता था। सिनेमा भी वह चाहे-जैसा

नहीं देखता था। माता-पिता के पैर दबाने, मालिश करने, उन्हें तकलीफ न होने देने में उसे आनन्द आता था। फिजूलखर्ची से उसे नफरत थी। घर में जब कभी फिजूल-खर्ची होती तो उसे बड़ा दुख होता। उसका आहार भी बड़ा सात्विक और संयत था।

वह गाय और बछड़ों पर बहुत प्यार करता था। एक बछड़े का तो नाम ही, उसने अपने अनुरूप 'राजा' रख दिया। मृत्यु के दो घंटे पूर्व उसने उसकी याद की थी।

राजनीति की मोटी-मोटी बातें उसे मालूम थीं। वह अखबार पढ़ता रहता था। बापू की हत्या से उसे बड़ा दुख हुआ था।

लेकिन ऐसे होनहार, सुशील और सुकुमार-मति बालक को, इतनी अल्पायु में चल देना है, यह कल्पना किसने की थी! पिता अपनी जिम्मेदारी को सोच ही रहे थे और उसकी प्रगति के साधनों को जुटा ही रहे थे कि वह तो अनहोनी कर गया!

आठ—केवल आठ—दिन की अत्यल्प बीमारी में उसने किसी को सेवा का मौका भी नहीं दिया! बीमारी में भी उसने जिस धीरज, शान्ति और नियमितता का परिचय दिया, आज भी उसकी स्मृति धुंधली नहीं हो सकी है, न हो सकती है।

जीते-जी जिसे नहीं पहचाना जा सका, मृत्यु ने उसके भीतरी प्रकाश को प्रकट कर दिया। शायद पिछले जन्म का वह अपूर्ण-योगी, सिद्धि का पंथी होगा, जो यहाँ आया, निर्विकार रहा। योग में रस, व्यवहार में सावधानी का वह सजीव उदाहरण था।

जब तक वह जीया सु-पूत की तरह आज्ञापालन और सेवा करता रहा, और जाते समय अपने माता-पिता को मोह छोड़कर संसार के बच्चों को अपना समझने का संदेश दे गया।

वह १ सितम्बर '४८ को देह-मुक्त हुआ। इस तरह वह विश्वात्मा में व्याप्त हो गया। वह विश्व का था और विश्व में ही उसका चिरन्तन स्थान हो सकता है। वह सीमा से सीमातीत होकर परिवार को अपनी मृत्यु द्वारा मोह-मुक्ति का उपदेश दे गया। क्या इस अर्थ में वह गुरु नहीं रहा ?

ऐसे बाल-गुरु को प्रेमाञ्जलि !

आशीर्वाद

अृषभदासजी कोअी लेखक तो नहीं है। लेकीन पुत्र-स्नेह ने अुनको लेखन-शक्ती प्रदान की। अुनके प्यारे पुत्र तो अब चल बसे हैं। लेकीन अुसकी प्रतीमाअें, जो घर घर में मौजूद हैं, अब अीन के प्रेम-भाजन हुअी हैं। अुनके अुपयोग के लीअे यह पुस्तक प्रकाशीत की जा रही है। अुम्मीद है अुपयुक्त साबीत होगी।

महीलाश्रम २१-७-४९. वीनोबा

ऋषभदासजी कोई लेखक तो नहीं है। लेकिन पुत्र-स्नेह ने उनको लेखन-शक्ति प्रदान की। उनके प्यारे पुत्र तो अब चल बसे हैं। लेकिन उसकी प्रतिमाअें, जो घर घर में मौजूद हैं, अब इनके प्रेम-भाजन हुई हैं। उनके उपयोग के लिअे यह पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। उम्मीद है उपयुक्त साबित होगी।

महिलाश्रम २१-७-४९. विनोबा

: १ :

भगवान महावीर

प्यारे राजा बेटा,

आज मैं तुम्हें जैनधर्म के २४ वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की कहानी सुनाऊँगा। पच्चीस सौ साल पहले बिहार प्रान्त में वैशाली नगर के उपनगर कुण्डग्राम या कुन्दनपुर में राजा सिद्धार्थ के यहाँ चैत्र सुदि १३ को उनका जन्म हुआ था। हर साल जैन लोग इस दिन महावीर-जयन्ती मनाते हैं। इस वैशाली को आज-कल बसाढ़ कहते हैं। यह पटना के पास है। महावीर के पिता सिद्धार्थ गण-पति कहलाते थे। उस समय जनता का राज्य था और नगर के कुछ योग्य मुखिया मिलकर राज्य चलाते थे। ये लोग बारी-बारी से अपना मुखिया चुनते थे। इसीको गण-पति कहा जाता था। ऐसा इसलिये करते थे कि एक आदमी के हाथ में सत्ता या अधिकार आ जाने से प्रजा पर अत्याचार या जुल्म होने का डर रहता था। इसलिए आपस में मिल-जुलकर प्रेम से रहने के लिए उन लोगों ने यह रिवाज चलाया। कितने समझदार लोग थे वे !

महावीर के जन्म के समय सिद्धार्थ के यहाँ बहुत खुशियाँ मनाई गईं। गरीबों और दुखियों को इनाम बाँटे गए। महावीर के जन्म के बाद उनके यहाँ धन-धान्य और आनन्द दिन-पर-दिन बढ़ने लगा। इसलिए महावीर का जन्म-नाम लोगों की सलाह से वर्धमान रखा गया। शुक्ल-पक्ष के चांद की तरह बढ़ने को वर्धमान

कोई ऐसा करता तो उसकी खूब मरम्मत होती थी। यह सब देखकर महावीर विचार-मग्न रहने लगे। वे किसी से पूछते तो उत्तर मिलता कि यह तो धर्म है। धर्म में किसी को कुछ करने-कराने का क्या अधिकार है?

यही हाल स्त्रियों का था। समाज में स्त्रियों को भी हलका समझा जाता था। महावीर अपनी माँ पर बहुत प्यार करते थे। उन्होंने देखा कि जैसे मुझे अपनी माँ प्यारी है, वैसे ही सबको अपनी माताएँ प्रिय हैं। फिर माँ की जाति का इतना अपमान क्यों?

इन सब बातों पर गहराई से सोचने पर महावीर को ऐसा लगा कि ये लोग धर्म के नाम पर अधर्म फैलाते हैं। यह सब मिथ्या-दृष्टि हैं। उन्होंने निश्चय किया कि धर्म के सच्चे स्वरूप को समझकर लोगों को सन्मार्ग पर लाना चाहिये। लेकिन यह काम घर पर रहकर होना कठिन था। इसके लिए तो संयम और साधना की ज़रूरत थी। घर में अनेक तरह की सुख की वस्तुएँ थीं, लेकिन महावीर को उनसे संतोष नहीं मिला।

महावीर की वैराग्य-वृत्ति को देखकर उनके माता-पिता चिंता में पड़ गए। पूछने पर महावीर ने कहा कि "तात, संसार में दुख, अन्याय, छल, कपट और हिंसा-झूठ को देखकर मेरा मन छटपटा रहा है। मेरी तो एक ही कामना है कि खुद आकुलताओं से छूटकर सब प्राणियों को सच्चे सुख का मार्ग बताऊँ। इसके लिए आपकी आज्ञा की ज़रूरत है। यह बात २८ वर्ष की उम्र में हुई। अंत में बहुत आग्रह के बाद वे दो वर्ष तक और घर में रहे।

तीस वर्ष की भरी जवानी में वे राज-पाट और सुख-सम्पत्ति को छोड़कर घर से निकल पड़े। अनेक तकलीफों को सहते-सहते बारह वर्ष तक उन्होंने कठोर तपस्या द्वारा 'केवल-ज्ञान' प्राप्त किया। जानते हो, 'केवलज्ञान' क्या है? यह जैनधर्म का विशेष शब्द है। इसका अर्थ यह है पूरे ज्ञान को पा लेना। आत्मा में अनन्त ज्ञान भरा है परंतु मोह और राग-द्वेष से वह ज्ञान दबा रहता है; जैसे बादलों से सूरज। तपस्या से जब मोह और राग-द्वेष का परदा दूर होता है तब आत्मा का ज्ञान-निर्मल-शुद्ध ज्ञान प्रकट हो जाता है! महावीर स्वामी केवलज्ञान प्राप्त होने तक बिलकुल मौन रहे। अब वे सब लोगों को धर्म का सच्चा उपदेश देने लगे। उन्होंने कहा कि दूसरों को दुख देने से अपने को सच्चा सुख नहीं मिल सकता। शरीर की इच्छा पूरी करने में सच्चा सुख नहीं है, वह तो दूसरों के दुख दूर करने से मिलता है।

बेटा, इसीलिए इतने वर्षों के बाद भी लोग उनकी पूजा करते हैं। वे भगवान थे अर्थात् दोषों से दूर और गुणों के भण्डार। उनका निर्वाण ७२ वर्ष की आयु में पावापुरी में हुआ। हम लोग हरसाल दिवाली मनाते हैं। यह त्यौहार इन्हीं महावीर स्वामी की पुण्य स्मृति में सारा भारतवर्ष मनाता है। उस दिन सबको खुशी हुई थी। 'निर्वाण' का अर्थ मौत नहीं, बल्कि मौत से सदा के लिए छुटकारा है। इसे मोक्ष भी कहते हैं। ये सारी बातें बड़े होनेपर बारीकी से जानने की कोशिश करना।

दीपावली का त्यौहार आनन्ददायी है। वह सबको सुखी होने की शिक्षा देता है। आज अपने देश में यह त्यौहार मनाया तो जाता है, परन्तु असली उद्देश्य दूर हो गया है। बहुत से लोग पटाखे उड़ाते हैं। इससे देश की बहुत हानि होती है। कभी कभी तो यह सुख दुख भी हो जाता है। यह त्यौहार तो बड़ों के जीवन से कुछ सीखने के लिए है। ऐसा नहीं होना चाहिए कि पटाखे आदि में अपने धन, समय और जीवन का नाश करें। दूसरों का उपकार करने में, उनकी सेवा करने में सुख मानना चाहिए। जैसा सुख महावीर स्वामी को मिला, वैसा ही हम भी प्राप्त कर सकते हैं। बड़े होने पर तुम जानोगे कि दीपावली के त्यौहार में कितनी बड़ी बात है और उसे कैसे और क्यों मनाना चाहिए।

—रिषभदास के प्यार

तेरा साँई तुज्झ में, ज्यों पुहुपन में बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर-फिर ढूंढे घास॥
जा कारन जग ढूंढ़िया, सोतो घट ही माहिं।
परदा दीया भरमका, तातैं सूझै नाहिं॥
शब्द बराबर धन नहीं, जो कोइ जानै बोल।
हीरा तो दामों मिलै, सब्दहि मोल न तोल॥

—कबीरदास

: २ :

भगवान गौतम बुद्ध

प्यारे राजा बेटा,

पिछली बार भगवान महावीर के जीवन के बारे में लिखा था। आज भगवान बुद्ध की कथा लिख रहा हूँ।

भगवान बुद्ध महावीर स्वामी के समय में ही हुए हैं। बुद्ध का जन्म पच्चीस सौ वर्ष पहले वैशाख सुदि पूनों को हुआ था। जो दुनिया को दुख से छूटने का, शान्ति और सुख पाने का रास्ता बता जाते हैं, उनको हजारों वर्षों तक नहीं भूला जा सकता। देखो न, बुद्ध भगवान पच्चीस सौ साल पहले हुए, लेकिन उनकी याद अभी भी लोग भक्ति-पूर्वक करते हैं।

बुद्ध भगवान का जन्म कपिलवस्तु नामक नगरी में हुआ था। यह नगरी हिमालय की तराई में है। इनके पिता का नाम शुद्धोदन और माता का मायादेवी था। ये शाक्य कुल के कहलाते थे। महावीर की कथा में बताया है कि उस समय महाजनों का या गणों का राज्य था। कुछ मुखिया लोग मिलकर राज्य चलाते थे। शुद्धोदन ऐसे ही एक राज्य के सभापति थे इसलिए इन्हें राजा भी कहते थे। शुद्धोदन की दो रानियाँ—मायावती और महाप्रजापति थीं। ये दोनों बहनें गौतम-वंश की थीं। बुद्ध को इसीलिए शाक्य-पुत्र,

गौतम आदि कहते हैं। बुद्धदेव का जन्म उपवन यानी बगीचे में हुआ। बात यह हुई कि मायावती को गर्भ-अवस्था में घूमने की इच्छा हुई। उसे दास-दासियों सहित पालकी में बिठाकर आम्रवन (आम के बगीचे) में ले गए। वहाँ उनके पेट में दर्द हुआ। तब दासियों ने चारों तरफ पर्दे आदि लगा दिए और वहीं इनका जन्म हुआ। गौतम बुद्ध के जन्म के सात दिन बाद उनकी माँ मायादेवी का देहान्त हो गया। अब इस बालक का लालन-पालन उसकी मौसी या सौतेली माँ महाप्रजापति ने किया। इनका जन्म नाम सिद्धार्थ रखा गया। आगे चलकर जब सिद्धार्थ ने ज्ञान प्राप्त किया और संसार को दुख से छूटने का मार्ग बताया तब वे शाक्य, गौतम, तथागत, बुद्धदेव आदि नामों से पुकारे जाने लगे।

सिद्धार्थ का लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार से हुआ। उनकी शिक्षा आदि का भी बहुत अच्छा प्रबंध किया गया और वे योग्य बन गए। उनका बचपन बहुत मज़े में और सुख-पूर्वक व्यतीत हुआ।

बड़े होने पर सिद्धार्थ का विवाह यशोधरा नामक एक गुण-वान् और सुंदर कन्या से हुआ। राजा ने इनके रहने के लिए तीन सुन्दर महल बनवाए। ये मकान गर्मी, सर्दी और वर्षा के लिए थे। यानी एक मकान ऐसा था, जिसमें गर्मी के दिनों में भी ठण्डक रहती, दूसरे में सर्दी के दिनों में भी गर्मी और तीसरे में बरसात में नमी यानी गीलापन और जीव-जन्तु का डर नहीं रहता। आज्ञाकारी दास-दासियाँ थीं, आराम के पूरे साधन थे; सुयोग्य और सुन्दर पत्नी थी, लेकिन सिद्धार्थ अक्सर कुछ विचार करते ही दिखाई देते।

एक दिन शाम के समय रथ पर घूमते हुए सिद्धार्थ को एक बूढ़ा दिखाई दिया। उसके बाल सफेद हो गये थे, कमर झुक गई थी और वह लकड़ी के सहारे धीरे धीरे चल रहा था। इसे देख कर सिद्धार्थ ने अपने सारथी यानी रथ हाँकने वाले से पूछा :—

"छन्न! यह आदमी ऐसा क्यों है?"
"कुमार, यह बूढ़ा है।"
"तो क्या सब इसी तरह बूढ़े होते हैं?"
"हाँ, कुमार एक समय हम सब बूढ़े होंगे।"

सिद्धार्थ घर लौटे, परन्तु उनके सामने उस बूढ़े का चित्र घूमता रहा। बिना दांत का पोपला मुँह, जगह-जगह झुर्रियाँ पड़ा बदन। वे सोचने लगे, इस बुढ़ापे को कैसे टाला जाय? यह तो दुखदायी है।

इसी तरह एक दिन घूमते हुए एक रोगी दीख पड़ा। उसकी कमजोर, दीन और दुखी अवस्था को देख कर सिद्धार्थ ने अपने सारथी से पूछा :

"छन्न, यह कौन है?"
"कुमार, यह रोगी है।"
"तो क्या रोग सबको होता है?"

"हाँ, कुमार सबको कुछ-न-कुछ रोग होता ही है और उसे भोगना ही पड़ता है।"

सिद्धार्थ आगे नहीं जा सके। घर लौट आए। अपने कमरे में बैठकर वे विचार करने लगे, दुख देनेवाले रोग को टाला कैसे जाय ?

इसी प्रकार एक दिन सिद्धार्थ ने देखा कि कुछ लोग एक आदमी को बाँधकर ले जा रहे हैं। उसे देखकर कुमार ने अपने सारथी से पूछा :

"छन्न, ये लोग इस तरह उस आदमी को बाँधकर क्यों ले जा रहे हैं ?"

"कुमार, यह मर गया है। इसको जलाने के लिए गाँव के बाहर ले ज़ा रहे हैं।"

अब सिद्धार्थ का मन घूमने में नहीं लगा। वे विचार में पड़ गए। उनके आगे अब तीन चित्र थे। बुढ़ापा, बीमारी और मृत्यु। इनसे छूटने का उपाय ? क्या ये दूर नहीं हो सकते ? सारा संसार इन दुखों से भरा है, यह कैसे टाला जाय !

विचार करते-करते उन्होंने तय किया कि संसार के इन दुखों को दूर करना ही चाहिए। अभी जैसे सुख भोग रहा हूँ, उनसे तो रास्ता मिलेगा नहीं। इसलिए अब घर छोड़ देना चाहिये। ऐसे विचारों में कुछ समय बीत गया।

एक दिन उन्हें खबर मिली कि उनके पुत्र हुआ है! वे फिर विचार में पड़ गए। उनको लगा कि यह लड़का मोह में डालने वाला राहू है। विचार-विचार में खबर देनेवाले के सामने

उनके मुँह से 'राहू' निकल पड़ा। राजा शुद्धोदन ने खबर देने-वाले से पूछा कि सिद्धार्थ ने कुछ कहा है? उसने कहा, "राजन्, उन्होंने तो कहा 'यह राहू है।' इस पर से शुद्धोदन ने उस बालक का नाम राहुल रख दिया।

सिद्धार्थ को पुत्र होने से प्रसन्नता नहीं हुई। वे तो घर छोड़ने का ही विचार करने लगे।

एक दिन आधी रात को वे यशोधरा के कमरे में गए। वहाँ राहुल के निर्दोष और प्यारे चेहरे को देखकर क्षण-भर के लिए मोह उत्पन्न हो गया, लेकिन फिर दृढ़ विचार करके सारथी को साथ ले जंगल की ओर चले गए। अपने सारे गहने और कपड़े उतार कर सारथी को दे दिए। साधारण से कपड़े पहनकर वे अब संसार का दुख दूर करने निकल पड़े।

सिद्धार्थ ने वर्षों तक तपस्या कर के दुख से छूटने के मार्ग की खोज की। अंत में उन्हें सफलता मिली। ज्ञान प्राप्त हुआ। वे बुद्ध कहलाने लगे। लोगों को उन्होंने अपने ज्ञान से रास्ता बताया, लोगों ने उसे अपनाया और उनका दुख दूर होने लगा।

बेटा, तुमने अजन्ता की गुफाओं में बुद्धदेव की ध्यान-मय मूर्ति देखी है न! कितना शान्त चेहरा है? इसीसे तो उन्हें अब तक याद किया जाता है। जो अपना कल्याण करते हैं और लोगों को कल्याण के रास्ते पर लगाते हैं उन्हें ही 'भगवान' कहते हैं। संसार उन्हें कैसे भूल सकता है!

आज बौद्धधर्म के करोड़ों अनुयायी चीन, जापान, बर्मा, स्याम, मलाया, रूस आदि देशों में हैं।

आज इतना ही बहुत है, बड़े होने पर भगवान महावीर और भगवान बुद्धदेव के बारे में तुम्हें बहुत-सी बातें जानने को मिलेंगी।

—रिषभदास के प्यार

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवां तो दहुँ दिसि फिरै, यह तौ सुमिरन नाहिं॥
हीरा तहाँ न खोलिए, जहँ खोटी है हाट।
कस करि बांधो गाठरी, उठकर चालो बाट॥
कथनी मीठी खांड सी, करनी विष की लोय।
कथनी तजि करनी करै, विष से अमृत होय॥
वाद-विवादे विष घना, बोले बहुत उपाध।
मौन गहे सबकी सहै, सुमिरै नाम अगाध॥
सहज मिलै सो दूध सम, मांगा मिलै सौ पानि।
कह कबीर वह रक्त सम, जा मैं ऐंचातानि॥
अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप॥

—कबीरदास

: ३ :

ईसा मसीह

प्यारे राजा बेटा,

आज तुम्हें ईसाइयों के धर्म-संस्थापक या मसीहा प्रभु ईसा की कहानी लिख रहा हूँ। ईसा को मानने वाले ईसाई कहलाते हैं। ईसाई धर्म संसार के बड़े-बड़े धर्मों में से एक है। यूरोप और अमेरिका वाले ईसाई ही हैं। बजाजवाड़ी के पास का गिर्जाघर ईसाइयों का मन्दिर है। इसे तो तुमने देखा ही है। ईसाइयों के मंदिर को गिर्जाघर कहते हैं। यहाँ ईसाई लोग हर रविवार को प्रार्थना (प्रेयर) करने के लिए जमा होते हैं। इनके गिर्जाघर गाँव-गाँव में हैं।

ईसा का जन्म फिलस्तीन (पैलेस्टाइन) में हुआ था। यह छोटा-सा देश एशिया-खण्ड के पश्चिमी सिरे पर है। यह देश इतना छोटा है कि उसे अपने यहाँ के एक ज़िले के बराबर कह सकते हैं। इसकी पूर्व-पश्चिम की लम्बाई ८० मील और उत्तर-दक्षिण की चौड़ाई १४० मील है।

करीब दो हजार वर्ष पूर्व फिलस्तीन में यहूदी जाति के लोग रहते थे। यों तो यहूदी जाति जन-संख्या के हिसाब से छोटी है परंतु यहूदी बड़े होशियार समझे जाते हैं। ये सूद या व्याज खाने

में बहुत बदनाम थे, लेकिन इनमें बहुत बड़े व्यापारी, विद्वान और शास्त्रज्ञ भी हैं। यह जाति बहुत पुरानी है। लेकिन आज तक उनका अपना कोई देश भी नहीं था। अभी अभी उन्होंने इज़राईल नामक देश अरबों से लेकर बना लिया। इनमें और अरबों में जन्म-भूमि के लिए झगड़े चल ही रहे हैं। यहूदी संसार में चारों ओर फैले हुए हैं। जर्मनी का हिटलर यहूदियों का जानी दुश्मन था। उसने चुन-चुन कर जर्मनी से यहूदियों को खत्म करने का प्रयत्न किया था। इसी यहूदी जाति में ईसा का जन्म हुआ था।

ईसा का जन्म मेरिया नामक कुमारी से हुआ था। ईसाई लोग मानते हैं कि ईसा पवित्र कुमारी के पेट से दैवी-शक्ति के रूप में पैदा हुए थे। मेरिया गॅलेली तहसील के नाजरेथ गाँव में रहती थी। इसकी सगाई यूसुफ नामक बढ़ई के साथ तय हो गई थी। यूसुफ बैथलहम में रहता था, इसलिए मेरिया भी वहीं चली गई। वहीं पर ता० २४ दिसम्बर की आधी रात को ईसा का जन्म हुआ। इस कारण ता० २५ दिसम्बर को जो त्यौहार मनाया जाता है, उसे ईसाई लोग नाताल कहते हैं।

ईसा की पढ़ाई धार्मिक पाठशाला में हुई। इन पाठशालाओं को वहाँ सिनेगॉग कहते हैं। यहाँ कहानियों द्वारा धर्म की पढ़ाई होती थी। कहानियों द्वारा पढ़ाई करना अच्छी बात है। ईसा जब १२ साल के हुए तब उनके माता-पिता उन्हें येरुसलम की यात्रा में साथ ले गए। वहाँ मंदिर के पास बहुत बड़ी पाठशाला थी। उसमें धर्म-शास्त्र की पढ़ाई होती थी। वहाँ दूर-दूर के बालक रहकर पढ़ते थे। ईसा को बचपन से ही कुछ पढ़ने-सीखने की

इच्छा रहती थी। इस मौके को पाकर वह बड़े खुश हुए। जब उनके माता-पिता मंदिर में पूजा आदि करते रहते, तब वह पाठ-शाला में जाकर धर्म-चर्चा सुना करते। उन्हें अपनी शंकाओं का समाधान-जनक उत्तर भी मिलता। इस चर्चा में वह इतने लीन हो जाते कि उन्हें माता-पिता तक का ध्यान नहीं रहता था। उनके माता-पिता घर जाने लगे तो साथ में ईसा को न पाकर वापिस येरुसलम लौटे। वहाँ वह चर्चा में लीन थे। कितनी बड़ी इच्छा थी ईसा की पढ़ने की !

ईसा के बारह से तीस वर्ष की उम्र तक के जीवन की किसी बात का पता नहीं चलता। ऐसा लगता है कि वे इन १८ वर्ष तक अपनी साधना या सत्य की शोध में लगे रहे होंगे। तीस साल की उम्र में ईसा ने यौहान नामक महात्मा से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के बाद चालीस दिनों तक पहाड़ पर भूखे रहकर ईसा ने साधना पूरी की और ज्ञान प्राप्त किया। अब वे लोगों को उप-देश करने लगे।

यहूदियों में पसोहर का त्यौहार बहुत प्रसिद्ध है। अपने पर्युषण की तरह वह पूज्य है। हरसाल हजारों लोग उसे मनाने के लिए येरुसलम जाया करते थे। ईसा भी गए। उन्होंने वहाँ देखा कि मंदिर के अहाते में व्यापारियों की दूकानें लगी हुई हैं और वहाँ पूजा के सामान के साथ-साथ बलि के पशु भी बेचे जा रहे हैं। यह उन्हें अच्छा नहीं लगा। लोगों को इस व्यापार के विरुद्ध उन्होंने समझाया। इससे दूकानदारों को वहाँ से निकल जाना

पड़ा। उन्होंने लोगों से यह भी कहा कि इस मंदिर को तोड़ फोड़ डालो, तीन दिन में मैं दूसरा मंदिर खड़ा कर दूँगा। इसका मतलब यह था कि बाहरी क्रियाकांड का कोई महत्त्व नहीं है, मन की पवित्रता ही सच्ची भक्ति है, मन ही सच्चा मन्दिर है। लेकिन यह सच्ची बात वहाँ के लुटेरे और स्वार्थी पुजारियों तथा लोभी व्यापारियों को बुरी लगी। क्योंकि ऐसा होने से उनकी कमाई बंद होती थी। इसलिए ये लोग ईसा के खिलाफ हो गए।

लेकिन ईसा को तो अपना काम करना था। अपने दीक्षा-गुरु महात्मा यौहान की तरह ये गरीबों, दुखियों, पापियों, अज्ञानियों में सच्चे धर्म का प्रचार करने लगे। उनका कहना था कि जातिभेद फिजूल है, धर्म पालन और धारण का सबको अधिकार है, अपनी बुराइयों और दूसरे के गुणों को देखना चाहिए। वे कहानियों या दृष्टान्तों द्वारा धर्म का उपदेश देते थे। क्योंकि बे-पढ़े-लिखे लोग ऊँची भाषा नहीं समझ सकते।

वे पापियों और अधार्मिकों को धर्म पर कैसे लगाते थे? इस सम्बन्ध में तुम्हें एक घटना बताता हूँ :

एक महिला से कोई अपराध हो गया था। उस समय यह रिवाज था कि अपराध करने वाली स्त्री को चारों तरफ से घेर कर उस पर हजारों पत्थर बरसाकर उसे मार डाला जाता था। वह स्त्री दौड़ते-दौड़ते ईसा के चरणों में आ गई। ईसा बिलकुल चुप रहे। इतने में भीड़

उनके पास आ गई और जोर-जोर से आवाजें आने लगीं कि इस स्त्री को छोड़ दो। सब लोग हाथ में पत्थर लेकर खड़े थे। आखिर ईसा ने कहा कि, "भाइयो, आप लोगों का कहना बिलकुल ठीक है, जिसने अपराध किया है, उसे सजा जरूर मिलनी चाहिए। लेकिन एक बात है। पहला पत्थर वही फेंके जिसने अपने जीवन में कोई अपराध नहीं किया है। इस पर सब लोग विचार में पड़ गए। अब तो धीरे धीरे सब खिसकने लगे। थोड़ी देर बाद ईसा ने मुँह उठाकर देखा तो सामने एक भी आदमी नहीं था। उन्होंने उस स्त्री को सदुपदेश देकर अपना भक्त बना लिया।

ईसा के चेले हलकी मानी जानेवाली जातियों के, बे-पढ़े-लिखे लोग थे। ईसा की संगति और उपदेश से उनकी आत्माएँ ऊँची उठने लगीं। वे सब से प्रेम करते, धर्म की सच्ची बात बताते। इससे पढ़े-लिखे पण्डितों और पुजारियों का प्रभाव कम होने लगा। अंत में इन लोगों ने ईसा को मरवा डालने का विचार किया।

कुछ लोग उन्हें पकड़कर रोमन अधिकारी के पास ले गए। उनके सामने अपनी शिकायतें रखीं। रोमन अधिकारी ने इस मामले को राजा हेराद के पास भेज दिया। हेराद गेलिली का राजा था और ईसा भी वहीं के थे। हेराद की कोई बुराई ईसा ने नहीं की इसलिए उसने ईसा को एक शाही पोशाक पहनाकर वापिस कर दिया। लेकिन उनकी जाति के लोग तो ईसा को मरवाना चाहते थे। अतः वे सूबेदार पीटर के पास वापिस गए और ईसा को राजद्रोही, धर्मद्रोही आदि बताया। पीटर ने ईसा से पूछा, परंतु

कोई अपराध नहीं दीखा। लेकिन लोगों के आग्रह से कोड़े लगाने की सजा सुना दी। लोगों को इससे भी सन्तोष नहीं हुआ और कहा-इसे क्रूस (सूली) पर लटकाया जाय।

जिसे मौत की सजा मिलती थी उसे क्रूस पर लटकाते थे। आजकल तो मौत की सजा बड़ी सरल हो गई है। जानते हो, क्रूस कैसा होता है?

एक खम्भे पर आड़ी लकड़ी जोड़ दी जाती है। खम्भे पर आदमी को खड़ा करके आड़ी लकड़ी पर दोनों हाथ फैला देते हैं। फिर हाथ-पैरों और छाती में मजबूत कीले ठोंक देते हैं। अब तुम ही सोचो कि कितनी तकलीफ की बात है यह? ईसा को भी इसी तरह क्रूस पर लटका दिया गया। पुजारियों और पण्डितों ने लोगों में ऐसा डर पैदा कर दिया कि ईसा के प्रेमी भी उनसे नहीं मिल सके। यह अचरज की बात है कि ईसा को पकड़ाने में उनके एक शिष्य का हाथ था।

क्रूस पर लटकते समय उनकी माँ, मौसी और छोटे शिष्य जॉन उपस्थित थे। उन्हें बड़ी वेदना हुई। ईसा का गला प्यास से सूखने लगा। आखिर उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि "इस काम को करने वाले समझते नहीं हैं कि वे क्या कर रहे हैं, तू उनपर दया कर, उन्हें सुबुद्धि दे!"

इस तरह संसार का एक महापुरुष चला गया।

वे प्रेम के अवतार थे। उन्होंने कहा था कि "जो तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे, उसके आगे दूसरा भी गाल कर दो।"

कुछ इतिहासकारों का कहना है कि वे हिन्दुस्तान में भी आए थे और यहाँ के ज्ञानियों की संगति में रहने का उन्हें मौका मिला था।

जो हो, तुम्हें उनकी याद करके अच्छे कार्यों में जीवन का सदुपयोग करना चाहिए। वे बड़े क्षमा-शील थे।

—रिषभदास के प्यार।

रहिमन यहि संसार में, सबसों मिलिए धाइ।
ना जानै केहि रूप में, नारायण मिलि जाइ॥
एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
रहिमन सींचै मूल कों, फूलहि फलइ अघाय॥
खैर, खून, खांसी, खुसी, बैर, प्रीति, मद-पान।
रहिमन दाबे ना दबै, जानत सकल जहान॥
बड़े बड़ाई ना करैं, बड़े न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका है मोल॥

—रहीम

कठिन मित्रता जोरिये, जोर तोरिये नाहिं।
तोरे तैं दोऊन के, दोष प्रकट हो जाहिं॥ —बुधजन
भले-बुरे सब एक से, जौलों बोलत नाहिं।
जान परत है काक पिक, ऋतु वसंत के माहिं॥
उत्तम जन सौं मिलत ही, अवगुन हू गुन होय।
ज्यों घन संग खारो उदधि मिलि, बरसै मीठो तोय॥

: ४ :

कनफ्यूशियस

प्यारे राजा बेटा,

पच्चीस-सौ साल पहले दुनिया के कई देशों में महा-पुरुष हो गए हैं। भगवान महावीर, बुद्धदेव आदि के बारे में तुम जान चुके हो। कनफ्यूशियस भी एक ऐसा ही महा-पुरुष था। यह चीन में हुआ था। इसका चीनी नाम 'कुंग–फू–त्जे' था।

हिन्दुस्तान की तरह चीन भी प्राचीन और सभ्य देश रहा है। दुनिया में सब से ज्यादा लोग चीन और हिन्दुस्तान में रहते हैं। चीन की आबादी चालीस करोड़ के ऊपर है। इन दोनों देशों का सम्बन्ध बहुत पुराना है। इनके धार्मिक, बौद्धिक और राजनैतिक सम्बन्ध का इतिहास बड़ा रोचक है। चीन के जो यात्री यहाँ आए थे, उन्होंने अपनी यात्रा के वर्णन में हिंदुस्तान का अच्छा विवरण दिया है। हुवेनत्सांग नामक यात्री सम्राट हर्षवर्धन के समय यहाँ आया था।

चीनी लोग ज्ञान और कौशल के बडे खोजी रहे हैं। कागज बनाना, छापखाना तैयार करना, बन्दूक और बारूद बनाना आदि काम चीन से ही शुरू हुए। सचमुच चीन के लोग बड़े परिश्रमी और बुद्धिमान रहे हैं।

पृथ्वी के नक्शे से मालूम हो जायगा कि चीन हम से उत्तर-पूर्व की तरफ है। आजकल हवाई जहाज से आना-जाना होता है। पहले जमाने में हिमालय के रास्ते से यात्रा होती थी। चीन जाने वालों को पहले उत्तर की तरफ जाकर फिर पूर्व की तरफ जाना पड़ता था। यह बड़ा विकट रास्ता था।

चीनी लोगों का रंग कुछ पीला होता है। चौड़ा मुँह, चपटी नाक, छोटी आँखें, छोटे-छोटे पैर के पंजे और चेहरे पर बहुत कम बाल। यह साधारणतः चीनी आदमी का परिचय है। पहले इनकी चोटी बहुत लम्बी होती थी, परन्तु अब यह रिवाज कम हो गया है। अपने यहाँ भी पहले लम्बी चोटी रखाने का रिवाज था। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी अपनी माँ यशोदा से कहा था—

'मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी'

सूरदास का यह भजन बड़ा सुन्दर है। सो, अब तो अपने देश में भी यह रिवाज नहीं रहा। रिवाज समय और परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। चीनी लोग बौद्ध-धर्म को मानते हैं। बौद्ध-धर्म अपने देश में तो नहीं रहा; लेकिन चीन, जापान आदि में बहुत फैला। बौद्ध-धर्म के पहिले चीन में कनफ्यूशियस और ला-ओ-त्से के धर्म प्रचलित थे।

कनफ्यूशियस और ला-ओ-त्से दोनों समकालीन थे। दोनों महान् थे। लेकिन, दोनों के विचारों में अन्तर था। कनफ्यूशियस का कहना था कि संसार में अच्छी तरह रहो। इसीकी शिक्षा

उसने दी। वह व्यावहारिक था। वह इसी संसार को स्वर्ग बनाना चाहता था। ला-ओ-त्से का कहना था कि पर-लोक सुधारने के लिए अच्छा काम करना चाहिये। दोनों के विचारों में यह अन्तर था कि कनफ्यूशियस परलोक में विश्वास नहीं करता था और ला-ओ-त्से परलोक मानता था। यह तो धर्म की बात है। लेकिन घरेलू व्यवहार, समाज, राजनीति आदि में कनफ्यूशियस के विचार ही ज्यादा प्रचलित थे। कुछ भी हो, दोनों के विचार लोगों को सुखी बनानेवाले थे।

कनफ्यूशियस का जन्म चीन के शाटुंग प्रान्त में लूना नामक राज्य में हुआ था। उसके पिता जिले के किलेदार थे। उनकी बड़ी इज्जत थी। उनके कोई पुत्र नहीं हुआ, सब लड़कियाँ ही हुईं, तब ७० वर्ष की उम्र में उन्होंने दूसरा विवाह किया। इसके बाद कनफ्यूशियस का जन्म हुआ। कनफ्यूशियस की तीन साल की उम्र में उनका देहान्त हो गया। इससे कनफ्यूशियस को बहुत तकलीफें उठानी पड़ीं। दुःखों और संकटों का सामना करते हुए बढ़ने वाले ही महान् होते हैं।

कनफ्यूशियस को पढ़ने की प्रबल इच्छा थी। बड़े परिश्रम से उसने पढ़ाई की। उसके पढ़ने की एक बहुत बड़ी विशेषता थी। वह जो पढ़ता, उसका पालन करता। ऐसी ही एक बात अपने यहाँ महाभारत ग्रंथ में आई है। युधिष्ठिर का नाम सुना है न तुमने! वे अपने गुरु से जो पढ़ते उसको जन्म-भर निभाते। एक बार उन्होंने 'सत्य' का पाठ पढ़ा। दूसरे दिन सब विद्यार्थियों

ने पाठ सुना दिया। पर युधिष्टिर ने कई दिन तक वह पाठ नहीं सुनाया। गुरुजी के पूछने पर कह देते 'अभी तो याद नहीं हुआ'। आखिर एक दिन उन्होंने कहा: "सत्य तो पालने की चीज है, सुनाने की नहीं।" कनफ्यूशियस का भी यही हाल था। कनफ्यूशियस ने चौदह साल की उम्र में निश्चय कर लिया था कि मुझे तो साधु बनना है। साधु बनकर समाज की सेवा करनी है।

पढ़ाई खत्म होने पर कनफ्यूशियस ने एक पाठशाला खोली। पाठशाला में धनी-गरीब, ऊँच-नीच का भेद-भाव नहीं था। उनका कहना था कि मतलब गाँठना पढाई का उद्देश्य नहीं है। दूसरों की भलाई ही पढ़ने का उद्देश्य है। दूसरों की भावनाओं और अधिकारों का विचार करना ही मनुष्य का धर्म है। इससे ही समाज की उन्नति हो सकती है। दूसरों की भावनाओं का विचार नहीं करने वाले अच्छे आदमी नहीं हो सकते। कनफ्यूशियस ने छोटे लोगों से कहा कि बड़ों का आदर करो। बड़ों ने लम्बे जीवन में जो अनुभव लिए हैं, उनसे फायदा उठाओ। और बड़ों से कहा कि छोटों की भलाई का खयाल रखो। नहीं तो वे दुश्मन बन जावेंगे। कनफ्यूशियस शिक्षक ही नहीं था। राजनीति का भी उसे काफी ज्ञान था। ४२ वर्ष की उम्र में कनफ्यूशियस चाटूंग प्रान्त के गवर्नर बन गए। उनकी सुन्दर राज्य-व्यवस्था को देखकर सब चकित रह गए। वहाँ दुराचार और बेईमानी दूर हो गई। सब लोग सुखी रहने लगे। उन्होंने गरीबों को काम दिया, भूखों को अन्न दिया और व्यापार बढ़ाने के लिए जगह-जगह सड़कें और पुल बनवाए।

यह खुशहाली देखकर पड़ौसी राजा घबरा गया। उसे अपने राज्य में विद्रोह खड़ा होने का डर हो गया। आखिर उसने एक युक्ति सोची कि कनफ्यूशियस के प्रान्त के कुछ अफसरों को लोभ दिया जाय। ८० सुन्दरियाँ, बहुत-सा धन तथा घोड़े आदि भेंट में दिया। सरदार (अफसर) मोह में पड़ गए। अब कनफ्यूशियस के हजार प्रयत्न करने पर भी हालत नहीं सुधर रही थी। आखिर कनफ्यूशियस त्याग-पत्र देकर चले गए। स्थान-स्थान पर घूमकर उन्होंने जनता को समझाया।

कनफ्यूशियस की मृत्यु ७५ वर्ष की उम्र में हुई। मृत्यु के कुछ समय पहले उन्होंने 'वसन्त और पतझड़' नामक पुस्तक लिखी थी। मरते समय तक उन्होंने चीन को उन्नत, पवित्र और सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया।

सचमुच कनफ्यूशियस सच्चे शिक्षक, समाज-सुधारक, न्यायी शासक और देश-भक्त महापुरुष थे।

—रिषभदास के प्यार।

धन, कन, कंचन, राजसुख, सबहिं सुलभ कर जान।
दुरलभ है संसार में, एक यथारथ ज्ञान॥

—भूधरदास

दुष्ट भलाई ना करै, किये कोटि उपकार।
सर्पहिं दूध पिलाइये, विष ही के दातार॥

—बुधजन

: ५ :

सत्यवीर सुकरात

प्यारे राजा बेटा,

आज मैं तुम्हें यूनान देश के एक बहुत बड़े विद्वान् की कहानी लिख रहा हूँ। यूनान यूरोप-खण्ड का एक देश है, जो एशिया के उत्तर-पश्चिम में है। यह बहुत पुराना देश है। पच्चीस सौ साल पहले यूनान बहुत उन्नति पर था। इस देश को ग्रीस भी कहते हैं। यहाँ कला, कौशल और व्यापार बहुत अच्छा और दूर-दूर तक होता था। यहाँ तक कि यूनान और हिन्दुस्तान के आपसी सम्बन्ध बहुत अधिक थे और दोनों देशों के लोग आर्य कहलाते थे। उस ज़माने में वहाँ पर किसी एक आदमी का राज्य नहीं था। जनता के मुखिया लोग राज्य चलाते थे।

इस यूनान देश में भी बड़े-बड़े विचारक और महापुरुष हो गए हैं। सच तो यह है कि देश कोई भी हो और काल भी कैसा ही हो, सचाई तो सदा एकसी ही रहती है। जो उपदेश एशिया और भारत के महापुरुषों ने दिया, वही उपदेश समय के अनुसार सब देशों के महापुरुषों ने दिया। सूरज ऐसा कोई भेद-भाव थोड़े ही रखता है कि मैं अमुक देश या मकान पर ही प्रकाश फैलाऊँगा।

जो आदमी अपने को बड़ा समझकर दूसरों के गुणों को नहीं समझते या उनकी निंदा करते हैं और छोटा समझते हैं, उनकी उन्नति नहीं होती। वे मूर्ख रह जाते हैं। बड़े तो वे लोग होते हैं जो कहीं से भी ज्ञान पाने का प्रयत्न करते और सबके गुणों की कद्र करते हैं। इसलिए तुम्हें भी ज्ञान प्राप्त करने के लिए हिंदुस्तान या यूनान आदि का भेद-भाव नहीं करना चाहिए। जहाँ से अच्छी बात मिले, उसे सीखोगे तो एक दिन तुम भी बड़े बन सकोगे।

मैं जिस बड़े आदमी की कहानी लिख रहा हूँ उसका नाम सुकरात (साक्रेटीस) था। वह पच्चीस सौ वर्ष पहले यूनान में हुआ था। उसी समय अपने यहाँ भगवान् महावीर और गौतम बुद्ध हुए थे। सुकरात दीखने में बड़ा कुरूप था। लेकिन उसके विचार इतने ऊँचे थे कि ढाई हजार वर्ष के बाद भी लोग बड़े चाव से उसके विचारों को पढ़ते हैं। हम लोग अपने बाप-दादा के नाम तक भूल जाते हैं; लेकिन जो बड़े होते हैं उन्हें तो सारी दुनिया याद रखती है। सुकरात सचमुच बहुत बड़ा विद्वान् था।

सुकरात बचपन में भी बड़े सहनशील थे। उनका जीवन बहुत सादा और कष्ट-मय था। तकलीफों को सहन करने का अभ्यास इतना बढ़ा लिया था कि कड़ाके की ठण्डी में भी वे थोड़े-से कपड़ों से अपना काम चला लेते। ठण्डी में वहाँ बरफ गिरता है। बरफ पर भी वे नंगे पैर चले जाते। तकलीफों को सहने वाला और सादगी से रहनेवाला कैसी भी परिस्थिति में निराश या

उदास नहीं होता। सुकरात के पिता मूर्ति बनाने वाले कारीगर या शिल्पी थे तथा माँ दाई थी।

तुम सोचते होगे कि सुकरात ने बड़ी-बड़ी किताबें लिखी होंगी! नहीं, उन्होंने कोई किताब नहीं लिखी। अपने यहाँ बुद्ध और महावीर ने भी कोई किताब नहीं लिखी। वे लोगों के साथ चर्चा किया करते थे। जो गलतियाँ और भ्रांतियाँ होतीं उन्हें सुधारते और समझाते। वे कहते कि 'भाइयो, गलत विचार और अंध विश्वास से हानि होती है।' वे हमेशा सद्गुणों के महत्त्व को बताते और सद्गुणी बनने के लिए कहते। कोई भी काम करने के पहले उसके नफा-नुकसान को सोच लेना चाहिए। वे विवेक और ज्ञान को ही महत्त्व देते थे। वे साफ़ कहते कि बड़े या पैसे वाले घर में जन्म लेने से ही कोई बड़ा नहीं बनता। ज्ञानी ही बड़ा कहलाता है।

लेकिन ऐसे गुणवान् और ज्ञानी का जीवन सुख से नहीं बीता। और तो क्या, सुकरात को अपनी पत्नी से भी काफी दुख मिला। उसकी पत्नी का नाम **झेंथापि** था। वह बड़ी कर्कशा और दुष्ट स्वभाव की थी। एक समय की बात है कि उसने सुकरात को खूब गालियाँ दी। वह एकदम शांत-भाव से बैठे रहे। इससे उनकी पत्नी को और भी गुस्सा आ गया। चिढ़कर उसने नाली का गन्दा पानी सुकरात के शरीर पर उंडेल दिया। इसपर सुकरात ने हँसकर कहा:—"बादलों के गरजने के बाद तो वर्षा ही होती है।"

एक बार किसी मित्र ने उनसे कहा कि "आप इतना शोर-गुल कैसे सहन करते हैं ?"

इस पर सुकरात ने सरलता से कहा, "क्या आप बत्तख और मुर्गियों की आवाज सहन नहीं करते ?"

मित्र ने कहा : "मुर्गी और बत्तख तो अंडे देते हैं।

इस पर सुकरात ने कहा : "तो, मेरी पत्नी भी बच्चे देती है।"

झेंथापि इतनी दुष्ट थी कि सुकरात के कपड़े तक फाड़ डालती थी। लेकिन वह तो यही कहता था कि सिखाने वाले के हाथ में बुरा-से-बुरा घोड़ा आनेपर जैसे वह सिखा लेता है, वैसे ही मेरी भी झेंथापि के साथ निभ जाती है। इसके साथ यदि मेरी निभ सकती है तो किसी के साथ भी मेरी निभ जाएगी। यही मेरी कसौटी है।

सुकरात बड़े स्पष्ट-वादी थे। अपने विचार साफ़ साफ़ प्रकट कर देते थे। इससे कई स्वार्थी लोग सुकरात के दुश्मन बन गए। सच बात तो यह है कि धनवान, सत्ताधारी और अधिकारी की सत्ता और जबरदस्ती दूसरों के अज्ञान पर ही टिकी रहती है। दूसरों की मेहनत से ज्यादा फायदा उठाने वाला ही धनवान बनता है। भोले लोग ही राजा या अधिकारी की बातें सुनेंगे। धर्म सम्बन्धी अंध-श्रद्धा भी लोगों के अज्ञान पर ही बढ़ती है। सुकरात जब अपने सच्चे विचार फैलाने लगे तब स्वार्थियों को यह सहन नहीं हुआ। उन लोगों न सुकरात के विरुद्ध न्याय-सभा में अर्जी दी। सुकरात की उम्र इस समय ७० वर्ष की थी। उन पर दोष

लगाया गया कि वह अथेन्स (यूनान की राजधानी) के लोगों को बिगाड़ते हैं तथा प्रजा-तन्त्र की आज्ञा नहीं मानते। यह फरियाद (नालिश) लाइसिअस नामक वक्ता ने की थी। ५०१ लोग न्याय करने बैठे। यद्यपि सुकरात पर लगाए गए सब दोष झूठे थे क्योंकि उन्होंने तो लोगों की सेवा ही की थी, तथापि स्वार्थियों के बहुमत ने उन्हें दोषी ठहरा दिया। २२० वोट उनके पक्ष में आए और २८१ विरुद्ध में। उन्हें मौत की सजा सुनाई गई। लेकिन कहा गया कि ३० मीना जुर्माना भर देने पर मृत्यु-दण्ड नहीं भोगना पड़ेगा। 'मीना' उस समय एक प्रकार का यूनानी सिक्का था। मित्रों ने समझाया कि जुर्माना भर देना चाहिए। लेकिन सुकरात ने यह नहीं माना। उन्होंने कहा:—"मेरा अब विदा लेकर जाने का समय हो गया है। सचाई पर कौन है, इसे परमात्मा के सिवा कौन जान सकता है।"

सुकरात ने अपने ऊपर लगाए गए दोषों पर जो बयान दिया था, लोग आज भी उसे चाव से पढ़कर ज्ञान प्राप्त करते हैं। धार्मिक त्यौहार के दिन होने से उन्हें तीन हफ्ते तक बेड़ियाँ पहनाकर जेल में रखा गया। मित्रों ने जेल से भगाने का प्रयत्न किया, लेकिन वे तो सत्यवीर थे। वे नहीं भागे। उन्होंने कहा, यह तो कायरता है। मैं ऐसा नहीं करूँगा। अगर मैं सच्चा हूँ तो मुझे किसी भी संकट से नहीं डरना चाहिए।

आखिर समय पर उनके सामने जहर का प्याला रखा गया। यह देखकर उनके मित्र, लड़के तथा पत्नी सब रोने लगे। उन्होंने

इन लोगों से कहा : "आप लोग शान्त रहें। मौत से कोई नहीं बच सकता। यह तो बड़ी अच्छी बात है कि सचाई के लिए मैं मर रहा हूँ। मैं बहुत प्रसन्न और शान्त हूँ। आप घबरायेंगे और रोयेंगे तो मैं शांत कैसे रह सकूँगा।" इस तरह लोगों को समझा कर उन्होंने जहर का प्याला पी लिया। जब तब शरीर में शक्ति और सुधि रही टहलते रहे और उपदेश देते रहे। ज्यादा असर फैलने पर वह लेट गये और थोड़ी देर में उनका देहान्त हो गया।

बेटा, इस तरह यूनान के लोगों ने एक महा-पुरुष को मार डाला। लेकिन क्या सुकरात मर गया है? नहीं, उनकी आत्मा अभी भी संसार के लोगों को सचाई और निडरता का प्रकाश देती है। जो महान् होते हैं, उनके शरीर का नाश भले ही कर दिया जाय, लेकिन उनकी महानता नष्ट नहीं की जा सकती।

लोग अपने देश के बड़े आदमी को जीते-जी नहीं पहचानते। जब तक वह जीवित रहता है, तब तक लोग उसे अपना शत्रु समझते हैं। ईसा मसीह की भी यही हालत रही। ऐसा हमेशा से होता रहा है। मरने पर ही उसकी पूजा की जाती है।

बड़े होने पर सुकरात के बारे में और भी ज्यादा बातें जानने की कोशिश करना।

—रिषभदास के प्यार।

: ६ :

राजा शिवि

प्यारे राजा बेटा,

आज मैं तुमको अपने देश के एक परोपकारी राजा की कहानी सुनाऊँगा। उस समय इस देश में अपना ही राज्य था। सब लोग सुखी थे। राजा प्रजा का बच्चों की तरह पालन करता था। कोई दुःखी नहीं था। और तो क्या, राजा लोग सचाई और न्याय के लिये प्राण तक देना अपना धर्म समझते थे। कितना अच्छा था वह जमाना!

शिवि नामक एक राजा था। वह बड़ा प्रेमी, न्यायी और उपकारी था। उसके राज्य में न कोई भूखों मरता था, न किसी पर अत्याचार होता था। पू. गांधीजी के शब्दों में 'रामराज्य' था। आज की तरह लोग दुखी नहीं थे, क्योंकि राजा अपना था। आज पराये अंग्रेज हम पर राज्य करते हैं। जब अंग्रेजों को कहा जाता है कि भाई, अपने देश में चले जाओ, तो इस सच्ची और न्याय की बातपर वे हमें जेल भेजते हैं। यह अंग्रेजों का पाप एक दिन उन्हें डुबोवेगा *। तो, शिवि राजा ऐसा ही था। उसकी सचाई, न्याय और दयालुता की कीर्ति चारों तरफ फैली हुई थी।

---

* अब अपना देश स्वतंत्र हो गया है। अंग्रेज उनके देश को लौट गए हैं।

एक दिन नारदजी घूमते-घूमते इन्द्र के दरबार में पहुँचे। इन्द्र ने पूछा, "महाराज, दुनिया के क्या हालचाल हैं?" उस जमाने में अखबार नहीं थे। चारों तरफ घूमनेवाले नारदजी ही इधर-उधर की खबरें सुनाते थे। नारदजी ने कहा, "भारतवर्ष में शिवि नामक एक राजा है। वह न्यायी और परोपकारी है। हमेशा प्रजा की भलाई चाहता है। इसके लिये वह प्राणों की भी पर्वाह नहीं करता।"

इन्द्र देवों का राजा था। उसे एक मनुष्य की—शिवि राजा की—बड़ाई कैसे सुहाती? इन्द्र ने कहा, "संसार में फँसे हुए मनुष्यों की प्यारी चीज प्राण है। जबतक प्राणों का मौका नहीं आता, तबतक ही ये बातें हैं। मनुष्य अपने लिये तो चाहे जो पाप करने लग जाते हैं फिर दूसरों के लिये प्राण देना तो दूर की बात है।"

नारदजी ने जवाब दिया, "किन्तु शिवि राजा वैसा नहीं है। वह मनुष्य तो क्या, किसी भी प्राणी के लिये प्राण दे सकता है।"

इन्द्र को अचरज हुआ। वह इसपर विश्वास न कर सका। राजा की परीक्षा लेने का विचार कर वह उसकी राजधानी में गया। शिवि राजा उस दिन शामको अपने बगीचे में घूमने गया था। सुगंधी-बेल के मंडप के नीचे झूले पर आनंद से राजा झूल रहा था। इतने में एक कबूतर उसके पैरों में आ गिरा। इसके बाद शीघ्र ही एक शिकारी भी आ पहुँचा। राजा ने शिकारी से पूछा, "भाई, बताओ, क्या बात है?"

"राजा साहब, यह कबूतर मेरा शिकार है, मुझे दे दीजिए।"

"भाई, यह तो मेरी शरण आ गया। शरणार्थी को आश्रय देना क्षत्रियों का धर्म है। मैं यह तुम्हें कैसे दे सकता हूँ!" राजा ने कहा।

"यह तो अन्याय है। मैं तीन रोज से भूखा हूँ। मेरा शिकार दीजिए।

"भाई, मैं अन्याय नहीं करूँगा। तुम्हें खाने के लिये अच्छे पक्वान्न दिला देता हूँ।" राजा ने फिर से कहा।

"राजन्, मैं गरीब हूँ और शिकारी हूँ। आपके पक्वान्नों की चाट लग जाने पर मेरा तो जीना मुश्किल हो जायगा। मुझे तो मांस चाहिए। अगर आपको यह कबूतर प्यारा है तो मुझे इसके बराबर मांस दिलाइए।"

राजा विचार में पड़ गए कि कबूतर के बराबर दूसरे प्राणी का मांस देने से तो उस प्राणी का भी प्राण जाता है। इधर शिकारी भी मांस के सिवा कुछ लेने को तैयार न था।

अन्त में राजा ने कहा, 'शिकारी, ठीक है। मैं तुम्हें कबूतर के वजन के बराबर मांस देता हूँ।'

तराजू और छुरी मंगवाई गई। राजा कबूतर के बराबर अपना मांस देने को तैयार हुआ। वह अपने शरीर पर छुरी चलाने ही वाला था कि इन्द्र ने अपना रूप प्रकट कर कहा, 'राजा, धन्य

हो तुम और तुम्हारी न्याय-परायणता। यह सब मैंने तुम्हारी परीक्षा के लिए किया था।' और इन्द्र अपने स्थान पर चला गया।

ऐसी ही एक कथा राजा मेघरथ की जैन-ग्रंथों में है। ऐसे ही परोपकार के कारण राजा मेघरथ ने तीर्थंकर नाम-कर्म का बंध किया था। यही आगे चलकर १६ वें शांतिनाथ तीर्थंकर हुए। तीर्थंकर यानी वह महान् पुरुष जो अपना और दूसरों का कल्याण करते हैं, कल्याण का मार्ग बता जाते हैं।

बेटा, जहाँ ऐसे न्यायी राजा हों, वहाँ के लोग भी सुखी रहते हैं। अब तुम्हारे ध्यान में आ गया होगा कि भारत को पुण्य-भूमि क्यों कहते हैं। अपने देश में लोगों की भलाई के लिए प्राण देनेवाले लोग हर जमाने में रहे हैं और आज भी देखो न, हमारे बापू—गांधीजी देश को सुखी बनाने के लिए जेल की तकलीफें उठा रहे हैं *। उनकी तपस्या जरूर अपने देश को आजाद करेगी और फिर संसार गांधीजी की कहानियाँ कहेगा।

—रिषभदास के प्यार।

दया धरम का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छांड़िये, जब लग घट में प्रान॥

---

* पू० गांधीजी का स्वर्गवास ता. ३० जनवरी सन् १९४८ को दिल्ली में शाम के ५॥। बजे हुआ।

: ७ :

सम्राट अशोक

प्यारे राजा बेटा,

तुमने अशोक का नाम सुना है न? आज मैं उसी के बारे में तुम्हें कुछ लिख रहा हूं। यह दुनिया में एक बहुत अच्छा और बड़ा राजा हो गया है। इसने लोगों की भलाई के बहुत बड़े-बड़े काम किए। यह खुद तो धार्मिक था ही, परंतु दूर-दूर के देशों में भी धर्म प्रचार के लिए इसने बहुत धन खर्च किया और प्रयत्न किए।

अशोक दो हजार साल पहले हो गया है। इसकी राजधानी बिहार प्रान्त में पाटलिपुत्र नाम के नगर या शहर में थी। इसे आजकल पटना कहते हैं। उस समय बिहार प्रांत को मगध कहते थे। तब यह बिहार नाम कैसे पड़ा? उस समय उस देश में जैन और बौद्ध धर्म का बहुत प्रचार था। हजारों बौद्ध साधुओं या भिक्षुओं के रहने के लिए बड़े-बड़े मकान होते थे। उन्हें 'विहार' कहा जाता था। ऐसे बहुत विहार वहाँ थे, इसलिए विहारोंवाले देश को विहार कहा जाने लगा। और इस तरह मालूम होता है विहार का बिहार बन गया।

बिहार का एक और भी अर्थ है। 'विहार' घूमने को भी कहते हैं। खासकर जैन साधुओं के घूमने को विहार कहा जाता है। जैसे साधारणतया अपने खाने को 'भोजन' कहते हैं, वैसे ही जैन साधु के भोजन को 'आहार' कहते हैं। जैन साधु पैदल

ही चलते हैं और उनका खाना भी विशेष प्रकार का होता है। अतः उनके लिए 'आहार-विहार' शब्द खास रूप से कहे जाते हैं। इस तरह साधुओं या मुनियों के विहार वाले प्रदेश को बिहार कहना भी सम्भव है। जो भी हो, 'विहार' शब्द के साथ बौद्ध और जैन साधुओं का सम्बन्ध अवश्य रहा है।

इसी बिहार में जैनधर्म के तीर्थंकर महावीर स्वामी और बौद्धधर्म के प्रवर्तक गौतम बुद्ध हुए हैं। ये दोनों राज-पुत्र थे और क्षत्रिय थे। इन्होंने दुनिया की भलाई के लिए राज-पाट छोड़-कर तपस्या की और बहुत तकलीफें सहन कीं। अन्त में इन्हें भलाई का रास्ता मिला और उपदेश देकर लाखों लोगों को भलाई के रास्ते पर लगाया। ऐसे महान् पुरुषों की यह जन्मभूमि रही है। सचमुच बिहार पुण्यभूमि है।

बिहार में बड़े-बड़े राजा हुए हैं। महावीर स्वामी और गौतम-बुद्ध के समय वहाँ पर दो तरह के राज्य थे। एक तो लोक-राज्य था यानी लोग मिलकर, अपने में से अच्छे लोगों का चुनाव कर के राज्य चलाते थे, दूसरे गण-राज्य थे यानी जैसे मालगूजार आदि होते हैं, जो कुछ हिस्से के मालिक होते हैं। धीरे-धीरे लोगों का राज्य मिटता गया और राजाओं का जोर बढ़ता गया। इससे वहाँ के राजा शक्ति-शाली बनते गए। अशोक का दादा चन्द्रगुप्त महान् सम्राट था। उसके अधीन कई राजा थे। उसका राज्य बहुत दूर दूर तक फैला हुआ था। चन्द्रगुप्त ने एक बहुत बड़ा काम देश के लिए किया। देश के कुछ हिस्से को यूनानवालों ने जीतकर वहाँ अपना

राज्य कायम कर लिया था। उनको हराकर चन्द्रगुप्त ने फिर से अपना राज्य स्थापित किया। चन्द्रगुप्त बड़ा बुद्धिमान राजा था। उसको राजनीति की शिक्षा देनेवाले महात्मा चाणक्य (कौटिल्य) थे। उनका लिखा हुआ 'अर्थ-शास्त्र' बेजोड़ ग्रंथ है। चन्द्रगुप्त ने यूनानवालों को हराकर उन्हें पूरी तरह अपने प्रेम के वश में कर लिया। उसने यूनान के सम्राट सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस की पुत्री हेलेन से शादी भी कर ली। उस जमाने के हमारे पूर्वज आज की तरह छूत-छात को नहीं मानते थे। वे परदेशवालों को भी अपने में मिला लेते थे। चन्द्रगुप्त बुढ़ापे में राज-पाट छोड़कर जैन-मुनि बन गया था। मैसूर रियासत के श्रमणबेलगोल की चन्द्रगिरि पहाड़ी उन्हीं की समाधि मानी जाती है। चंद्रगुप्त का राजघराना 'मौर्य-वंश के नाम से प्रसिद्ध था।

कहते हैं, अशोक जवानी में बड़ा क्रूर था। उसने अपने कई भाइयों को मारकर राजगद्दी प्राप्त की थी। वह शूर भी था। हिन्दुस्तान का सारा उत्तरी हिस्सा तो उसके कब्जे में था ही, लेकिन बाहर गांधार यानी अफगानिस्तान तक उसका राज्य फैला हुआ था।

दक्षिण में कलिंग (उड़ीसा) का राजा खारवेल भी बड़ा शूर और पराक्रमी था। यह जैन था और 'महामेघवाहन' इसकी उपाधि थी। यह स्वतंत्र था। इसने अशोक की अधीनता मंजूर नहीं की। इसलिए इन दोनों में बहुत भारी लड़ाई हुई, जिसमें करीब डेढ़ लाख सैनिक मारे गए। अशोक विजयी तो हुआ, परंतु यह भयानक दृश्य और खून की नदियाँ देखकर उसे वैराग्य हो गया।

तब से उसने लड़ना छोड़कर गांधीजी की तरह अहिंसा का प्रचार करना अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया। अपने राज्य के अनेक स्थानों पर, खंभों पर या पत्थरों पर नीति और धर्म की बातें खुदवाई। वे खंभे और बातें आज भी देखने को मिलती हैं। उसने लिखवाया "किसी भी प्राणी को मत सताओ, झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, संयम से रहो; दीन दुखियों पर दया करो आदि।"

साधुओं के रहने के लिए उसने बड़े-बड़े विहार बनवाए। उनके रहने, खाने-पीने तथा पढ़ने-लिखने का इन्तजाम किया। उसने साधुओं को दूर-दूर के देशों में भेजकर धर्म का प्रचार करवाया। उसके लड़के और लड़की ने भी बौद्धधर्म की दीक्षा लेकर सीलोन (लंका) में धर्म का प्रचार किया। उसके समान खुले दिल से और सच्ची लगन से धर्म का प्रचार किसी भी राजा ने नहीं किया। इसीलिए अशोक की कीर्ति चारों तरफ फैली और इतिहास में उसका नाम अमर हो गया।

बिहार में ऐसे बहुत बड़े-बड़े लोग होते रहे हैं। देश-रत्न बाबू राजेन्द्रप्रसादजी भी बिहार के ही हैं। राजेन्द्रबाबू को तुम पहचानते हो न? अपने पड़ौस के गेस्ट हाउस में वे ठहरा करते थे। और जब वे बगीचे में बैठे होते तब तुम वहाँ जाया करते और वे कहते थे– "आओ, हमारे नाम राशि आओ!" कितने अच्छे हैं हमारे ये नेता! कितनी सादगी और प्रेम है उनमें!!

धन्य है अपना यह देश जिसमें चन्द्रगुप्त और अशोक जैसे परोपकारी राजा हुए। महावीर और बुद्ध जैसे धर्मसम्राट उत्पन्न

हुए। आगे भी हमारे देश में महान् पुरुष पैदा होकर देश को सुखी बनाएंगे और देश का नाम तथा उसकी कीर्ति को बढ़ावेंगे।

कितना प्यारा नाम है अशोक! अशोक यानी शोक रहित। यानी जो शोक या दुख से दूर हो वह अशोक!

अब भूलोगे तो नहीं अशोक की कहानी! बड़े होनेपर इसके बारे में और भी बहुत-सी बातें तुम्हें जानने को मिलेंगी।

—रिषभदास के प्यार।

समदृष्टी तब जानिए, सीतल समता होय।
सब जीवन की आतमा, लखै एक सी सोय॥ —कबीर

साबुन-ज्ञान, विराग-जल, कोरा कपड़ा जीव।
रजक-दक्ष धोवे नहीं, विमल न होय सदीव॥ —द्यानतराय

समय परे ही जानिए, जो नर जैसा होय।
विन तायें खोटो-खरो, गहनो लखै न कोय॥ —अज्ञात

उद्यम, साहस, धीरता, पराक्रमी, मतिमान।
एते गुण जा पुरुष में, सो निर्भय बलवान॥ —बुधजन

कंचन कांचहि सम गनै, कामिनि काठ पखान।
तुलसी ऐसे संतजन, पृथ्वी ब्रह्म समान॥ —तुलसीदास

एक चरन हू नित पढ़ै, तो काटै अज्ञान।
पनिहारी की नेज सौं, सहज कटै पाषान॥ —बुधजन

: ८ :

सम्राट कुमारपाल

प्यारे राजा बेटा,

आज तुम्हें सम्राट कुमारपाल की कहानी लिख रहा हूँ ये गुजरात में करीब सात सौ वर्ष पहले हुए हैं। ये बड़े न्यायी प्रजावत्सल, विद्वान और धार्मिक थे। ये जितने अनुभवी थे, उतने ही पराक्रमी भी। इनके राज्य गुरु आचार्य हेमचन्द्र थे, हेमचन्द्राचार्य जैन धर्म के चरित्रवान् साधु थे और सब धर्मों के प्रति सम-भाव और सद्भाव रखनेवाले प्रकाण्ड विद्वान थे। हेमचन्द्र और कुमारपाल के कारण गुजरात का बहुत सन्मान बढ़ गया।

नक्शे में देखो। गुजरात पश्चिम की तरफ है। खानदेश के आगे गुजरात लग जाता है। इस के उत्तर में मालवा और राजपूताना है। दक्षिण में महाराष्ट्र है। गुजरात के व्यापारी कुशल और नम्र होते हैं। गुजराती लोग धन-धान्य से सुखी और दयालु होते हैं। इन की भाषा बड़ी मीठी लगती है। हरेक भाषा में कुछ विशेषता होती है। गुजराती भाषा का साहित्य बहुत उत्तम माना जाता है। यहाँ के लोगों में दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा अहिंसा के संस्कार बहुत ज्यादा हैं। यह सब आचार्य हेमचन्द्र और सम्राट कुमारपाल के धार्मिक प्रेम और प्रचार का प्रभाव है। सेवा-भाव बहुत ज्यादा है। यही कारण है कि गुजरात ने समय-समय पर

महापुरुष दिए हैं। पूज्य बापू भी गुजरात के ही थे। अब भी कई विद्वान और कार्यकर्त्ता गुजरात के नाम को ऊँचा कर रहे हैं।

गुजरात का सबसे बड़ा शहर अहमदाबाद है। यहाँ कपड़े की सबसे ज्यादा मिलें हैं। इसी के पास साबरमती नदी के किनारे गांधीजी ने आश्रम स्थापित किया था। जब सन् १९३० में नमक-सत्याग्रह छिड़ा, तब गांधीजी ने इस आश्रम को छोड़ते हुए प्रतिज्ञा की थी कि स्वराज्य मिलने के बाद ही यहाँ लौटूँगा। फिर वे वर्धा के पास सेवाग्राम आकर रहने लगे। आखिर वे साबरमती नहीं ही गए।

कुमारपाल का बचपन और जवानी बड़े कष्ट में बीती। उस समय कुमारपाल के चाचा जयसिंह गुजरात के शासक थे। ये बड़े शूर और पराक्रमी थे। इन्होंने शत्रुओं से युद्ध करके गुजरात को बढ़ाया और धनवान बनाया। यहाँ के मंत्री धार्मिक होते थे। ये वैश्य यानी व्यापारी होते हुए भी राजा के साथ युद्ध में साहस से भाग लेते थे और शासन-व्यवस्था भी बड़े व्यावहारिक ढंग से करते थे। गुजरात में व्यापार आदि बढ़ाने के कई उपाय किये थे। जयसिंह के कोई सन्तान नहीं थी। परन्तु वह कुमारपाल से ईर्षा रखता था। दो समान योग्यता के व्यक्ति प्रेम से बहुत कम रहते हैं। जयसिंह की महत्वाकांक्षा थी कि मेरे समान कोई दूसरा शूर या पराक्रमी मेरे राज्य में न हो। वह हमेशा कुमारपाल को मरवा डालने विचार करता रहता। इसलिए कुमारपाल को वर्षों तक अज्ञातवास में रहना पड़ा।

अपने अज्ञातवास के समय में कुमारपाल साधु का वेश धरकर अनेक देशों-प्रान्तों में घूमता रहा। किसी को भी अपना पता नहीं लगने दिया। इस घूमने से उसे कई नए अनुभव हुए। अलग-अलग प्रान्तों के रीति-रिवाज, भाषा, संस्कार, पहनाव, रहन-सहन आदि का परिचय मिला। इससे कुमारपाल का ज्ञान काफी गहरा और सूक्ष्म हो गया। गरीबों और अज्ञानियों की दशा का उसे बड़ा गहरा अनुभव हुआ।

महाराज जयसिंह की मृत्यु होने के पश्चात् कुमारपाल राजधानी में लौटा। उस समय गुजरात की राजधानी अणहिल्लपट्टण थी। इस शहर की शोभा अद्वितीय थी। जब उसने राज्य में प्रवेश कर राज्य की बागडोर सम्हाली तब उसकी उम्र ५० वर्ष की थी। १५ वर्ष तक तो वह अपने शत्रुओं से लड़ता रहा। उसका सबसे बड़ा शत्रु अजमेर यानी सपादलक्ष का राजा था। यह भी पराक्रमी था। इसीने अजमेर में 'आना सागर' तालाब बनवाया है। अन्त में कुमारपाल ने उसे हरा दिया। अब कुमारपाल शत्रुओं से मुक्त हो गया, सब इसके अधीन हो गए। अब वह अपनी राज्य-व्यवस्था को सुन्दर तथा प्रजा के लिए हित-कारक बनाने में अपना समय देने लगा।

कुमारपाल बड़ा योग्य राजा था। उसने सोचा कि सत्ता पाने पर आदमी में अनेक अवगुण पैदा हो सकते हैं। इसलिए अच्छी संगति में रहना चाहिए। उसने अनेक साधु महात्माओं की संगति की। किन्तु, धीरे-धीरे उसपर जैनाचार्य हेमचन्द्र का काफी

प्रभाव पडने लगा। वे महान् विद्वान्, कुशल राजनीतिज्ञ तथा निस्पृह वृत्ति के साधु थे। उन में साम्प्रदायिकता नहीं थी। वे कुमारपाल को ऐसी ही सलाह देते थे जिससे राज्य-व्यवस्था भी बड़ी सुन्दर हो जाती और प्रजा को सुख मिलता था। गुरु-शिष्य की यह जोड़ी रामदास और शिवाजी के समान थी।

प्रजा के सुख-दुख की सच्ची हालत जानने के लिए कुमारपाल नगर में वेश बदल कर घूमा करता था। एक दिन उसे किसी बड़े मकान में से रोने की आवाज सुनाई दी। वह खड़ा हो गया। यह एक स्त्री की आवाज थी। वह उस घर की ओर बढ़ा। उसने देखा कि एक स्त्री सफेद साड़ी पहने रो रही है। पूछने पर उस स्त्री ने कहा—

"तुम कौन हो भाई ?"

कुमारपाल—"मैं राज्य का एक सिपाही हूँ।"

स्त्री—"तब तुम मुझ से क्यों पूछ रहे हो ?"

कुमारपाल "हमारे राजा का नियम है कि प्रजा के सुख दुख की चिंता करना राज्य का कर्तव्य है।"

स्त्री—"पर मैं तो विश्वास नहीं करती।"

कुमारपाल—"क्यों क्या बात है ? तुम अपना दुख सुनाओ। अवश्य उसे दूर किया जायगा।"

स्त्री—"कल मेरी सारी सम्पत्ति राज्य के खजाने में पहुँच जायगी और मैं दर-दर की ठोकरें खाती फिरूँगी। यही सब सोच कर रोना आ रहा है !"

कुमारपाल—"क्यों, क्या हुआ बहन ? कहो तो !"

स्त्री—"हमारे यहाँ बहुत बड़ा व्यापार होता था। मेरे पति और पुत्र हमेशा जहाज पर विदेशों से व्यापार करते थे। मेरे दुर्भाग्य से जहाज डूब गया और उसमें मेरे पति और पुत्र दोनों मर गए। अब कल सुबह ही मेरी सम्पत्ति राज्य-नियम के मुताबिक जब्त कर ली जायगी।"

सुनकर कुमारपाल का मन पिघल गया। इस बहन का दुख उससे देखा नहीं गया। उसने उस स्त्री से कहा —

"नहीं, बहन ऐसा नहीं होगा।"

स्त्री ने कहा—"तुम्हारे कहने से मेरा दुख थोड़े ही टलने वाला है। यह तो राज्य-नियम है।"

कुमारपाल आखिर किसी तरह उसे धीरज बंधा कर लौट गया।

सुबह होते ही उसने मंत्रियों की एक सभा बुलवाई और आदेश किया कि निर्वंश स्त्री की सम्पत्ति राज्य-कोष में जमा करने के नियम को रद्द कर दिया जाय।

इस पर मंत्रियों ने कहा कि इससे तो राज्य की बहुत बड़ी आमदनी कम हो जायगी। इस नियम से प्रति-वर्ष लाखों की आमदनी होती है।

कुमारपाल ने कहा—"आय हो या न हो, प्रजा को दुखी करके राज्य का कोई महत्व नहीं है। प्रजा के सुख में ही हमारा सुख है। यह आज्ञा रद्द करनी ही होगी।" इस तरह

कुमारपाल ने स्त्री-जाति के लिए बहुत बड़ा काम किया। कुमार-पाल ने सब से बड़ा काम यह किया कि गुजरात भर में प्राणी-वध बंद कर दिया गया। वहाँ के लोगों में आज भी अहिंसा-वृत्ति सबसे ज्यादा है।

प्राणी-वध कैसे बंद हुआ, इसकी भी एक कहानी है।

राज्य की कुल-देवी के मंदिर में बलि चढ़ाई जाती थी। राजा कुमारपाल अहिंसाधर्मी था। उसे यह प्रथा बड़ी खराब लगी। उसनें प्राणी-वध निषेध की आज्ञा जारी कर दी। इससे प्रजा में असन्तोष फैल गया। लोगों ने यह तो माना कि खाने के लिए जीव-हिंसा न हो, किन्तु देवता के लिए बलि नहीं देना तो अधर्म है, अन्याय है।

लेकिन कुमारपाल अपनी बात पर दृढ़ थे। हेमचन्द्राचार्य से सलाह ली गई कि अपनी बात भी रहे और प्रजा तथा पुजारियों को सन्तोष भी हो जाय, ऐसा काम करना चाहिए। हेमचन्द्राचार्य सारी परिस्थिति को समझ गए और कुमारपाल तथा मंत्रियों के साथ कुल-देवी के मंदिर में आए। पुजारियों की बात ध्यान से सुनकर आचार्य ने आज्ञा दी कि देवी के लिए बलि के पशु बुलाये जायँ। पशु बुलाए गए। उन्हें गिनकर मंदिर में बंद कर दिया गया। पुजारियों ने पूछा कि बंद कर के क्या करेंगे? आचार्य ने कहा कि सुबह बताया जायगा।

सुबह राजा को साथ लेकर फिर आचार्य मंदिर पहुँचे। बंद पशुओं को बाहर निकाला गया। सब जीवित थे और एक भी कम नहीं था। पुजारियों की समझ में कुछ नहीं आया। तब आचार्यश्री

ने कहा कि "देवी यदि बलि भक्षक होती तो इतने बकरों में से एक को तो खा जाती। इससे आप देखते हैं कि देवी बलि नहीं चाहती। माँस खानेवाले ही यह चाहते हैं। जब वह स्वयं नहीं खाती, तब उसके आगे मारने से क्या फायदा!"

इस युक्ति के सामने पुजारी-गण चुप हो गए। फिर देवी के आगे बलि चढ़ाना बंद हो गया।

कुमारपाल की योग में बड़ी रुचि थी। हेमचन्द्राचार्य से प्रार्थना करके उसने गृहस्थों के उपयुक्त 'योग' पर एक अच्छा ग्रंथ लिखवाया। 'योग-शास्त्र' हेमचन्द्राचार्य का बड़ा सुन्दर ग्रंथ है। पहले लोग समझते थे कि योग की साधना और अभ्यास तो साधु ही करते हैं। इस ग्रंथ के अनुसार गृहस्थ योग-साध सकते हैं।

तुमने पहले की कुछ कहानियों में पढ़ा होगा कि महापुरुषों की मृत्यु उनके सम्बंधी लोगों के कारण हुई। कुमारपाल की हत्या भी उनके भतीजे अजयपाल ने विष देकर कर डाली।

महापुरुषों की कीर्ति उनकी मौत से ही अमर होती है। सचमुच कुमारपाल एक महान प्रजा-हितैषी सम्राट थे।

—रिषभदास के प्यार।

: ९ :

देश-भक्त भामाशाह

प्यारे राजा बेटा,

आज तुम्हें एक उदार महा-पुरुष की कहानी लिख रहा हूँ। उनका नाम भा मा शा ह था और वे ओसवाल जाति के, कावड़िया गोत्र के थे। और, मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह के महामंत्री थे।

यों तो हरएक जाति में अच्छे-अच्छे लोग हो गए हैं, लेकिन आज जो ओसवाल जाति सिर्फ व्यापारी रह गई है, उस में भी पहले बड़े-बड़े वीर, विद्वान और धर्मात्मा हो गए हैं। ओसवाल जाति के पूर्वज क्षत्रिय थे। जैन धर्म स्वीकार करने के बाद भी सैकड़ों वर्षों तक लड़ाई आदि में भाग लेकर वे विजयी होते थे। राजपूताना और गुजरात के राज-वंशों में ऊँचे-ऊँचे पदों पर ये लोग रहे हैं। उस समय इनमें व्यावहारिकता के साथ-साथ बहादुरी भी बहुत थी। आज तो थोड़ी-बहुत व्यावहारिकता ही रह गई है, साहस या बहादुरी पहले की तरह नहीं रही।

मेवाड़ का राजपूताने में खास स्थान है। मेवाड़ के राजा 'राणा' कहलाते थे। उनका वंश सिसोदिया है। इनका सब राजाओं में बहुत ऊँचा मान रहता था। क्योंकि इन्होंने किसी के आगे अपना सिर नहीं झुकाया। अपने हाथों कटकर, जलकर मर जाना कबूल किया, संकट सहे, लेकिन किसी के अधीन रहकर गुलामी का सुख इन्हें पसन्द नहीं आया। इसलिए इनका मान ज्यादा रहा!

यों तो सिसोदिया कुल में कई वीर राणा और सैनिक हो गए हैं, किन्तु उन सब में महाराणा प्रतापसिंह का स्थान बहुत ऊँचा है। ज्यादा कष्ट इन्हीं को झेलने पड़े। अनेक असह्य कष्टों और संकटों को सहकर भी महाराणा प्रताप ने अपनी टेक नहीं छोड़ी। इसीसे वे इतिहास में अमर हो गए।

उस समय दिल्ली के राज्य-तख्त पर बादशाह अकबर थे। चारों तरफ उनकी धाक थी। अकबर बड़े बुद्धिमान और चतुर थे। हिन्दुओं को खुश रखने के लिए जहाँ उन्होंने धार्मिक उदारता दिखाई, राज्य में हिन्दुओं को बड़े-बड़े पद दिए, गौ-हत्या बन्द कराई, वहाँ अनेक हिन्दू राजाओं को अपने अधीन करके उनकी लड़कियों से विवाह भी किए। सबको आदर दिया, लेकिन उन्हें अधीन भी किया। अकबर ने देखा कि और तो सब राजा-महाराजा मेरे अधीन हो गए हैं लेकिन मेवाड़ के राणा प्रतापसिंह अपनी टेक से जरा भी नहीं हटते। यों अकबर बार-बार प्रतापसिंह की वीरता और साहस की प्रशंसा करता था, लेकिन मनमें खटका तो था ही।

आखिर अकबर ने अपने युवराज सलीम तथा राजा मानसिंह के साथ बहुत बड़ी मुगल सेना भेजकर मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी। इधर मेवाड़ की सेना बहुत कम थी, लेकिन लड़ने में बड़ी बांकुरी थी। महाराणा प्रताप अपनी सेना लेकर हल्दी-घाटी पहुँचे। वहाँ दोनों सेनाओं में भयंकर लड़ाई हुई। हल्दी-घाटी चित्तौड़ और उदयपुर के बीच में अरावली पर्वत में है। उस लड़ाई के कारण

हल्दी-घाटी का बहुत महत्त्व बढ़ गया है। वीरों में यह 'माँ' के समान पूजी जाती है। लेकिन मुगलों की विशाल सेना के आगे महाराणा की छोटी सेना अन्त तक नहीं लड़ सकती थी। मुगलों की पहली सेना या टुकड़ी खतम हो जाती तो दिल्ली से दूसरी आ जाती। इनके पास धन-धान्य की भी कमी नहीं थी। लेकिन मेवाड़-सेना की यह बात नहीं थी। धीरे-धीरे मेवाड़ी वीर कम होने लगे। धन-धान्य भी खतम हो चला। सारे राजपूत युद्ध में लग गए थे इसलिए खेती भी नहीं हो सकती थी। यदि ये खेती करते तो दुश्मन लूट कर ले जाते। हालत यह हो गई कि खुद राणा साहब को भी भर-पेट भोजन नहीं मिलता था।

मेवाड़ के बड़े-बड़े गाँव उजड़ गए। लोग जंगलों में रहने लगे। महाराणा भी अपने बाल-बच्चों के साथ जंगलों में चले गए। इस बीच अकबर ने नम्रता के साथ सन्देश भेजा कि आपकी सेना खतम हो रही है और आप भी परिवार के साथ संकट में आ गए हैं, आप केवल मेरी अधीनता मुँह से स्वीकार कर लें, आप के पूरे राज्य की पूर्ति कर दी जायगी। लेकिन महाराणा तो अपनी टेक और आन के पक्के थे। उन्होंने उत्तर भेज दिया कि मुझे प्राणों का मोह नहीं है, मैं लड़ते-लड़ते वीर गति को प्राप्त करने में ज्यादा सुख मानता हूँ। जेलखाने में आराम की कोई कीमत नहीं है।

तो, अब राणा जंगल में रहने लगे। जो कल तक महलों में रहते, सुस्वादु भोजन करते और राज्य चलाते थे अब वे जंगल में रहकर घास-पत्ती खाकर, सर्दी-गर्मी में दिन काटने लगे। उनके

शरीर पर भी अनेकों घाव लगे हुए थे। उनका जीवन बड़े कष्ट में था।

एक दिन की बात है कि महाराणी ने अपने लड़के तथा लड़की को खाने के लिए रोटी दी। वे भूख से तड़फ रहे थे। लेकिन इतने में एक जंगली बिल्ली उस रोटी को झपटकर ले गई। अब वे दोनों बालक जोर-जोर से चिल्लाने लगे। इनका यह रोना-चिल्लाना महाराणा से नहीं देखा गया। उनकी आँखों में आँसू आ गए। उनके दुख की कल्पना नहीं की जा सकती। आखिर उन्होंने निश्चय किया कि परिस्थिति की विषमता को देखकर मेवाड़ का त्याग कर देना ही ठीक है।

मेवाड़ में यह बात फैली तो लोग दुखी हो गए। वे महाराणा को मन से चाहते थे। आखिर वह दिन भी आया जब महाराणा मेवाड़ को सदा के लिए प्रणाम कर के निकल जाने वाले थे। जब चलने को तैयार हुए तब दौड़ता हुआ एक भील आया और उसने प्रणाम कर के कहा कि मंत्रीवर भामाशाह आ रहे हैं। अब राणाजी थोड़ी देर के लिए ठहर गए।

इतने में भामाशाह भी आ पहुँचे। उन्होंने आते ही कहा, "अन्नदाता, आप यह क्या कर रहे हैं। आपके चले जानेपर प्यारा मेवाड़ अनाथ हो जायगा।"

महाराणा प्रताप बड़े वीर और सहनशील थे, लेकिन विवशता थी। उन्होंने कहा: "मंत्रीवर, क्या करूँ! मेरे पास न सेना है

न उसके पालने के लिए धन । मेरे कष्टों का पार नहीं है भामाशाह, मुझे जाने दो ।"

भामाशाह—"नहीं स्वामी, यह नहीं हो सकता । केवल धन की कमी के कारण आप मेवाड़ नहीं छोड़ सकते । कष्टों के बाद हमारे अच्छे दिन जल्दी ही आने वाले हैं !"

राणा—"तुम कैसे कहते हो ? अब क्या यह सम्भव है ?"

भामाशाह—"यह लीजिए, ये ऊँट आ रहे हैं । इन पर मैं अपनी सारी सम्पत्ति लाद लाया हूँ । इससे कम से कम २० हजार सैनिकों का १२ साल तक खर्च चल सकेगा ।"

राणा—"मंत्रीवर, मैं इसे कैसे स्वीकार कर सकता हूँ । यह राज्य की सम्पत्ति नहीं है, तुम्हारी है ।"

भामाशाह—"राणाजी, ऐसा न कहिए । मेवाड़ आपका है और मैं भी आपका हूँ । यह सम्पत्ति आपके काम आए, इससे अधिक और क्या सौभाग्य हो सकता है ?"

अब महाराणा प्रतापसिंह ने भामाशाह को छाती से लगा लिया । उन्होंने गद्गद होकर कहा :

"धन्य है यह मेवाड़ भूमि और भामाशाह जैसे सुपूत जो राजपूतों की शान को समझते हैं । ऐसे देश-भक्तों के कारण अवश्य ही मेवाड़ सदा उन्नत रहेगा ।"

अब क्या था । नये जोश और नई उमंग से सेना की भरती होने लगी । मेवाड़ के वीर भील, मीणा आदि महाराणा की

छत्र-छाया में एकत्रित होने लगे। मेवाड़ के सुदिन लौट चले। एक के बाद एक किला जीता जाने लगा।

बेटा, संसार में धनवान तो बहुत होते हैं और खुद पर संकट पड़ने पर खर्च भी खूब करते हैं। लेकिन भामाशाह जैसे उदार देश-भक्त बिरले ही होते हैं। आदमी धन को अपने जीवन से भी ज्यादा प्यारा समझता है। इसलिए संसार में वही बड़ा माना जाता है जो धन को सदुपयोग में लाकर जीवन को महत्व-पूर्ण समझता है।

अपने जमनालालजी बजाज (काकाजी) भी आधुनिक भामाशाह कहे जाते थे। इन्होंने देश-सेवा में और आज़ादी पाने के लिए अपना बहुत धन खर्च किया। आज वर्धा में जो इतने बड़े-बड़े विद्वान और महात्मा हैं, यह सब काकाजी की देश-भक्ति का कारण है। वे आज हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनकी कीर्ति सदा रहेगी।

बेटा, खूब कमाओ और खर्च करो; लेकिन समय आने पर समाज और देश के हित के लिए अपने धन का त्याग कर दो। यही धन की सार्थकता है। मैं तुमसे ऐसी ही उम्मीद करता हूँ।

—रिषभदास के प्यार।

: १० :

दो दोस्त

प्यारे राजा बेटा,

यह करीब दो हजार वर्ष पहले की कहानी है। इससे तुम जान सकोगे कि दो दोस्तों को आपस में किस तरह रहना चाहिए। प्रत्येक आदमी के कुछ मित्र होते हैं, लेकिन अन्त तक सब की मित्रता टिकती नहीं। ऐसा नहीं होना चाहिए। जिस को एक बार दोस्त या मित्र मान लिया, उसके साथ कभी भी दुश्मनी या बुराई पैदा नहीं होनी चाहिए।

गुणचन्द्र और शुभचन्द्र दो मित्र थे। गुणचन्द्र राजगृही का रहने वाला था और शुभचन्द्र वाराणसी (बनारस) का। दोनों एक साथ नालन्दा विश्वविद्यालय में पढ़ते थे। दो हजार वर्ष पहले इस देश में नालन्दा और तक्ष-शिला के विश्व-विद्यालय दुनिया-भर में प्रसिद्ध थे। नालन्दा बिहार में था और तक्ष-शिला पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में। यह सीमा प्रान्त पंजाब के ऊपर है। यह ध्यान देने की बात है कि भारतवर्ष के ये दोनों प्रसिद्ध विद्यालय देश के दो सिरों पर थे। दोनों तरफ से दूसरे देशों के सैकड़ों विद्यार्थी यहाँ आते थे। नालन्दा में तिब्बत, चीन, जापान आदि से और तक्ष-शिला में अफगानिस्तान, अरब आदि देशों से विद्यार्थियों का आना जाना होता था।

दो हजार साल पहले की कल्पना करो। उस समय आने-जाने के रेल, मोटर, जहाज आदि साधन नहीं थे। पत्र-व्यवहार के लिए डाकखाने और डाकिये नहीं थे। छापखाने नहीं थे। इससे सुन्दर-सुन्दर तथा चाहे जितनी पुस्तकें नहीं मिल सकती थीं। फिर भी विद्या प्राप्त करने के लिए रास्ते की अनेक तकलीफें सहन कर लोग यहाँ आते और हिन्दुस्तान से ज्ञान प्राप्त कर लौटते थे। उस समय हमारा देश बहुत उन्नत और पवित्र था। भारतवर्ष के बारे में लिखनेवाला इतिहासकार नालन्दा और तक्ष-शिला को नहीं भूल सकता।

कहते हैं भगवान् महावीर और गौतम बुद्ध ने कुछ चातुर्मास नालन्दा में किए थे। 'चातुर्मास' का सीधा और शाब्दिक अर्थ तो चार मास होता है, लेकिन भारत के धर्मों में इसका विशेष अर्थ है। आषाढ़ सुदी १४ से कार्तिक सुदी १४ तक, बरसात के चार महीनों में साधु एक ही स्थान पर रहते हैं, बाहर दूसरे गाँवों में भ्रमण नहीं करते। इन दिनों व्यापार और आवागमन बहुत कम रहता है, गाँवों के सब लोग खेती के कामों में लग जाते हैं। इसलिए आराम से, शान्ति से धर्म-ध्यान में समय बिताने के लिए यह चार महीने बहुत उपयुक्त होते हैं।

नालन्दा का विद्यालय बहुत बड़ा था। उसमें दस हजार विद्यार्थी एक साथ बैठ सकते थे। कहते हैं, वहाँ पन्द्रह सौ अध्यापक थे और १०० विषयों की पढ़ाई रोज होती थी। सब के खाने-पीने तथा रहने का पूरा इन्तजाम था। अब तुम ही सोच सकते

हो कि वह विद्यालय कितना विशाल रहा होगा। सरकार के पुरातत्त्व-विभाग की तरफ से वहाँ खुदाई का काम जारी है और जो पुरानी चीजें मिल रही हैं उनका संग्रह किया जा रहा है।

तुम्हें अचरज होगा कि वहाँ की खुदाई में कभी-कभी तो पूरे-के-पूरे मकान भी निकल जाते हैं। इससे मालूम होता है कि उस समय भी ईंट-चूने के पक्के मकान बनते थे। सचमुच हमारे पूर्वज बड़े विद्या-प्रेमी और कुशल कलाकार थे।

हाँ, तो मैं तुम्हें उन दोनों मित्रों की कहानी लिख रहा था वे दोनों राजनीति-विज्ञान के विद्यार्थी थे। उन दोनों ने 'राजनीति' विषय इसलिए लिया कि उनके पिता कानून-मंत्री थे। पढ़ाई समाप्त होने पर इन दोनों को अपने अपने पिता का पद मिलने वाला था। दोनों मित्र बड़े बुद्धिमान् और चरित्रवान् थे। अपने विषय में सब विद्यार्थियों से वे दोनों आगे रहते थे। कभी गुणचन्द्र प्रथम आता तो कभी शुभचन्द्र। राजगृह नालन्दा के पास ही था इसलिए गुणचन्द्र अक्सर, छुट्टियों के अवसर पर अपने घर चला जाता। बहुत बार उसके साथ शुभचन्द्र भी रहता। गुणचन्द्र के पिता शुभ-चन्द्र को भी पुत्र के समान चाहने लगे। शुभचन्द्र भी उन्हें पिता के समान समझता था।

राजगृह में गुणसेन नामक श्रेष्ठी (श्रावक) रहते थे। वे बड़े सम्पन्न और प्रतिष्ठित थे। उनकी कन्या का नाम रत्नमाला था। जैसा उसका नाम था, वैसी ही वह सुन्दर और विदुषी थी। वह मन-ही-मन गुणचन्द्र के रूप और बुद्धि के प्रति आकर्षित हो गई।

गुणचन्द्र भी उसके प्रति आकर्षित होने लगा। दोनों के माता-पिता को यह बात मालूम हो गई। सब की सलाह से तय हो गया कि गुणचन्द्र का विवाह रत्नमाला से कर दिया जाय। लेकिन गुणचन्द्र ने कहा कि पढ़ाई पूरी हुए बिना मैं विवाह नहीं करूँगा।

शुभचन्द्र को गुणचन्द्र और रत्नमाला की बातें मालूम नहीं थीं। बार-बार राजगृह आने से रत्नमाला की ओर वह आकर्षित होने लगा। जब ये दोनों मित्र राजगृह जाते तब रत्नमाला गुणचन्द्र से मिलने को आया करती। वह गृहस्थी के सामान्य ज्ञान के साथ-साथ संगीत, सिलाई, चित्रकारी आदि कलाओं में भी निपुण थी। शुभचन्द्र के दिल में रत्नमाला की ही बात रहने लगी। सहज भाव से वह रत्नमाला के साथ अपने विवाह की बात सोचने लगा। उसने पढ़ाई समाप्त होते ही बनारस जाकर पिताजी से यह चर्चा करने का निश्चय किया।

यथा समय दोनों मित्र परीक्षा में उत्तीर्ण हो गए। गुणचन्द्र सर्व प्रथम आया और दूसरे नम्बर में शुभचन्द्र। दोनों को अपनी इस सफलता पर बहुत आनन्द हुआ। अध्यापकों को भी विशेष हर्ष हुआ कि इनकी जोड़ी बराबर रही। विद्यालय ने दोनों का बहुत सम्मान किया।

लेकिन, इस आनन्द के समय भी गुणचन्द्र के हृदय में थोड़ा रंज था। उसके पिता का एक वर्ष पूर्व स्वर्गवास हो गया था। थोड़े दिनों पहिले माता भी चलती रहीं। आज उसकी इस सफलता को सिर आँखों पर झेलने और आशीर्वाद देने के लिए माता-पिता

नहीं थे। फिर भी उसे प्रसन्नता थी कि रत्नमाला के पिता ने बधाई का सन्देश देते हुए लिखा कि चैत सुदी पूनों के मुहूर्त पर रत्नमाला और तुम्हारा विवाह-कार्य सम्पन्न करना निश्चित किया है। अब केवल पन्द्रह रोज बाकी थे। गुणचन्द्र शुभचन्द्र को साथ लेकर राजगृह चला गया।

राजगृह में विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं। यह सब देखकर शुभचन्द्र अचरज में पड़ गया। उसकी सारी आशा और कल्पना धूल में मिल गई। उसे तरह-तरह के विचार आने लगे। उसे इसकी तो खुशी थी कि गुणचन्द्र का विवाह हो रहा है, वह न्याय-मंत्री भी बन जावेगा और चारों तरफ उसकी प्रशंसा भी हो रही है; लेकिन उसे ऐसा लगा कि गुणचन्द्र के मुकाबले में वह अभागा है। वह बड़ा खिन्न रहने लगा। आखिर शुभचन्द्र मानसिक चिन्ता और पीड़ा के कारण बीमार पड़ गया।

शुभचन्द्र की बीमारी से गुणचन्द्र चिंतित हो गया। नगर के नामी-गिरामी वैद्यों को बुलाकर दिखलाया गया। वैद्यों ने परीक्षा करके कहा: "इन्हें मानसिक दुख हो गया है और उसे सहन नहीं करने के कारण वह शरीर पर प्रकट हुआ है।"

अब तो गुणचन्द्र और भी चिन्ता में पड़ गया। आखिर ऐसा क्या मानसिक दुख हो गया? अन्त में कड़ा दिल करके गुणचन्द्र शुभचन्द्र के पास गया और पूछा :

"भाई, आखिर तुम ऐसे क्यों होते जा रहे हो?"

"यों ही किसी पुरानी बात की गहरी स्मृति के कारण कमजोरी आ गई है, और कुछ नहीं।"

"नहीं, सच-सच बताओ क्या बात है? वैद्य लो कहते थे कि मनपर असर बहुत गहरा हुआ है, कहीं........।"

"नहीं, मैं नहीं बतला सकता भाई।" शुभचन्द्र ने कहा।

"तुम्हें बतलाना ही होगा शुभचन्द्र; अन्यथा तुम्हारे दुख में मेरा विवाह नहीं होगा!"

जब शुभचन्द्र ने गुणचन्द्र का यह आग्रह देखा तो बड़े संकोच के साथ उसने कहा :

"भाई, सच तो यह है कि तुम्हारे साथ रत्नमाला का विवाह होनेवाला है यह मुझे मालूम नहीं था। तुम्हारे साथ रात-दिन रहने और उसके सम्पर्क में आने से मैं उसकी ओर आकर्षित होता गया और सोच लिया था कि पिताजी से रत्नमाला अपने लिए माँगने को कहूँगा।"

यह सुनकर गुणचन्द्र ने बड़े प्रेम से कहा:—"तो यह कौन बड़ी बात है शुभ भैया, पहले तुम स्वस्थ हो जाओ; रत्नमाला का विवाह तुम्हारे ही साथ होगा।"

गुणचन्द्र की यह बात सुनकर शुभचन्द्र को बहुत अचरज हुआ, उसकी आधी बीमारी तो यों ही दूर हो गई। उसने कहा: "नहीं भाई, ऐसा नहीं होगा। अब तो जो हो रहा है वही ठीक है। मुझे मौत की चिन्ता नहीं है, मैं तुम्हें दुखी नहीं देख सकता।"

लेकिन गुणचन्द्र ने उसकी एक न मानी और कहा: "मुझमें इतनी कठोरता अवश्य है कि दुखों और संकटों के आघातों को बर्दाश्त कर लूँगा, लेकिन तुममें वह शक्ति नहीं है। तुम्हारा हृदय कोमल है। तुम्हारी मौत की कीमत में मेरे दुख और संकट कोई महत्त्व नहीं रखते। तुम्हारा विवाह रत्नमाला से ही होगा।"

गुणचन्द्र ने कह तो दिया, परन्तु यह बात इतनी सरल भी नहीं थी। उसने पहले रत्नमाला को समझाया। पहले तो वह तैयार नहीं हुई। लेकिन गुणचन्द्र के आग्रह पर वह तैयार हो गई। इसी तरह वह रत्नमाला के माता-पिता के पास गया और उन्हें भी तैयार करने में सफल हुआ!

यथा समय शुभचन्द्र और रत्नमाला का विवाह हो गया और रथ में बिठाकर उन्हें वाराणसी (बनारस) रवाना कर दिया गया।

इधर राजगृह में गुणचन्द्र के पिता के स्थान पर जो अस्थायी (कुछ समय के लिए) न्याय-मंत्री थे, उन्होंने इस घटना से अनुचित लाभ उठाना चाहा। उन्होंने सोचा, गुणचन्द्र को बदनाम करने से उनका यह पद सुरक्षित रह सकेगा। उन्होंने गाँव-भर में अफवाह फैला दी कि गुणचन्द्र ने बहुत धन लेकर अपनी वचन-बद्ध वधू किसी परदेशी को बेच दी। साधारण लोग किसी बात का पूरा विचार नहीं करते। किसी बड़े आदमी ने जो कह दिया उसे सच मानकर अपनी धारणा बना लेते हैं। न्याय-मंत्री की बात से गुण-चन्द्र के बारे में भी लोगों के खयाल बदल गए। अब चारों ओर

उसकी निंदा होने लगी। रत्नमाला के माता-पिता ने भी लोगों को समझाया, लेकिन वहाँ उनकी सुनने वाला कौन था !

बात यहाँ तक बढ़ गई कि गुणचन्द्र का घर के बाहर निकलना तक बन्द हो गया। बाहर निकलता तो लोग ताने देते, उस पर थूँकते। उसने निश्चय कर लिया था कि कोई कुछ भी कहे, लेकिन अपनी ओर से सफाई नहीं दी जाय। होते-होते परिस्थिति यह आ गई कि उसे राजगृह में रहना कठिन हो गया। आखिर वह घर से निकल पड़ा।

लेकिन दुर्भाग्य तो उसके साथ लगा ही था। रास्ते में चोरों ने उसका सारा धन लूट लिया। वर्षों तक वह मारा-मारा फिरता रहा लेकिन उसे कहीं काम न मिला।

घूमते-घूमते वह वाराणसी (बनारस) पहुँचा। उसके कपड़े फटकर चिथड़े हो रहे थे, महीनों से हजामत न कराने के कारण सिर और दाढ़ी के बाल बढ़कर उसके रूप को और भी भयानक और बेडौल बना रहे थे। शरीर एकदम कमजोर हो गया था। ऐसी विषम स्थिति में उसने बनारस की एक धर्मशाला में रात को डेरा दिया। पड़ते ही उसे नींद आ गई।

वाराणसी में विमलसेन नामक एक धनिक श्रेष्ठी रहते थे। उस दिन रात को डाकुओं ने विमलसेन श्रेष्ठी को मारकर उनका धन लूट लिया। घर के लोगों के जाग जाने से जो कुछ हाथ लगा, उसे लेकर चोर भाग छूटे। नगर-रक्षक को सूचना दी गई। उन्होंने चोरों का पीछा किया। कई एक तो गली आदि देखकर

खिसक गए। जिनके पास धन था वे धर्मशाला में घुस गए। उन्होंने सोचा बचना कठिन है, इसलिए धन को तो यहीं छोड़ देना चाहिए, लेकिन अगर किसी के बगल में रख देंगे तो हम पकड़ने से बच जाएँगे और वही पकड़ा जायगा जिस के पास धन मिलेगा। यह सोचकर सोए हुए गुणचन्द्र के सामने धन की गठड़ी रखकर भाग छूटे। नगर-रक्षक यानी पुलिस ने आकर देखा तो गुणचन्द्र को चोर समझकर उसे उठाया। उस का रूप भी ऐसा ही था। गुणचन्द्र गहरी नींद में था। जगाने से वह हड़बड़ा कर उठ बैठा।

पुलिस की कोई बात उसके समझ में नहीं आई। वे उसे पकड़कर बड़े अफ़सर के सामने ले गए और कहा कि यही चोर है जिसने विमलसेन श्रेष्ठी को मारकर धन लूटा है। गुणचन्द्र सारी परिस्थिति को समझ गया। इसलिए बिना किसी आधार के उसने कुछ न बोलना ही ठीक समझा। उसे जेल में बंद कर दिया गया।

नगर के बहुत बड़े, प्रतिष्ठित सेठ की हत्या का मामला था। इसलिए न्याय-मंत्री की अदालत में ही मामला पेश हुआ। अपराधी को न्याय-मंत्री के सम्मुख खड़ा किया गया।

अपराधी को देखकर न्याय-मंत्री को लगा कि यह चेहरा तो उनका जाना पहिचाना है। लेकिन वे पूरी तरह पहिचान न सके। खैर, न्याय-मंत्री ने कोतवाल से सारा हाल मालूम कर लिया। अब अपराधी से पूछने की बारी थी।

"तुम्हारा नाम?"

"मेरा नाम गुणचन्द्र है!"

'गुणचन्द्र' नाम सुनते ही न्याय-मंत्री का हृदय भर आया। आसन से नीचे उतर कर न्याय-मंत्री ने उसे छाती से लगा लिया। सेवक से दूसरा आसन मंगवाकर उस के साथ वे ऊपर आए। अपराधी को अपने बराबर के आसन पर बिठाकर उन्होंने कहा :

"सज्जनो, आप लोग अचरज में हैं कि यह क्या हुआ! लेकिन अचरज की कोई बात नहीं है। मैं इन्हें बहुत अच्छी तरह पहिचानता हूँ। इनके समान विद्वान और कर्मठ तथा संयमी और त्यागी इस दुनिया में बहुत ही कम हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि ऐसा महान पुरुष इतना नीच काम कभी नहीं कर सकता। फिर कोतवाल ने जो कुछ कहा है उससे भी ये अपराधी साबित नहीं होते। इनके सामने धन की गठड़ी पड़ी थी और ये गहरी नींद में सोये थे। क्या कोई हत्यारा और चोर निश्चिन्त होकर सो सकता है? इन के पास किसी तरह का हथियार आदि भी नहीं है।

मेरी आज्ञा है कि कोतवाल सच्चे चोरों का पता लगाए और अपराधियों में से इनका नाम हटा दिया जाय।"

बेटा, समझ गए न कि ये कौन थे? ये गुणचन्द्र के मित्र शुभचन्द्र ही थे।

आज्ञा देकर वे आसन से उठ गए और दोनों मित्र घर गए। गुणचन्द्र के बाल बनवाकर सुगन्धित द्रव्यों से स्नान आदि करवाया गया। अच्छे कपड़े पहनाए गए। भोजन आदि से निवृत्त होकर अब वे आपस में चर्चा करने लगे।

शुभचन्द्र—"तुम्हारी यह हालत कैसे हो गई? इतने दिन कहाँ रहे, सारी बातें बताओ!"

गुणचन्द्र ने अपनी सारी कथा कह सुनाई। सुनकर शुभचन्द्र को बहुत दुख हुआ। शुभचन्द्र ने कहा—

"मेरे सुख के लिए तुम्हें इतना दुख उठाना पड़ेगा इसकी मुझे कल्पना नहीं थी! खैर, यह बताओ, तुमने अपनी निन्दा का प्रतिवाद क्यों नहीं किया?"

गुणचन्द्र—"परिस्थितियों के विरुद्ध होने पर सचाई भी झूठ बन जाती है। ऐसे अवसर पर चुप रहना ही लाभदायक होता है!"

शुभचन्द्र—"मेरा विचार तो है कि तुम्हारे विरुद्ध जिस दुष्ट न्याय-मंत्री ने भ्रम फैलाया है, उसका उचित बदला लिया जाय।"

गुणचन्द्र—"नहीं भाई, ऐसा मैं नहीं चाहता। जैसे के लिए तैसा बनने से लाभ नहीं होता। हमारी सचाई इसी में है कि धीरज से सब सहते जावें और अपने व्यवहार की सचाई से ही दुष्टों का प्रेम प्राप्त करें।"

शुभचन्द्र—"लेकिन यह कष्ट उठाना पड़ा सो?"

गुणचन्द्र—"यह तो अच्छी बात हुई। इस संकट-काल में मुझे जो अनुभव हुए, सीखने को मिला उससे मुझे सत्य और अहिंसा का बहुत प्रकाश मिला है। मेरा विश्वास है कि जिन लोगों ने मुझपर थूँका था वे गद्‌गद् होकर प्रेम के आँसू बहावेंगे, जिन्होंने निंदा की थी वे प्रणाम करेंगे! लेकिन धीरज रखना होगा।"

शुभचन्द्र ने राजा से गुणचन्द्र का परिचय करवाया और प्रार्थना करके न्याय-मंत्री का पद गुणचन्द्र को दिलवा दिया।

धीरे-धीरे यह खबर राजगृह तक पहुँच गई। लोगों को अपनी भूल मालूम हो गई। वे अपने न्याय-मंत्री को हटाने का प्रयत्न करने लगे। आखिर राजगृह के राजा ने गुणचन्द्र को सन्मान पूर्वक बुलाकर न्याय-मंत्री का पद सौंप दिया।

गुणचन्द्र वास्तव में गुणों का चन्द्रमा था। उसके हाथ से किसी का अन्याय नहीं हुआ। पढ़ाई के साथ उसे जो वर्षों का अनुभव हो गया था, इस कारण उसके निष्पक्ष न्याय की कीर्ति चारों तरफ फैलने लगी। अब वह सुखी रहने लगा।

बेटा, इससे तुम जान सकोगे कि गुणचन्द्र कितना सच्चा मित्र था और संकटों को सहकर भी उसने किसी को बुरा नहीं कहा। संकट आने पर मनुष्यको दुखी नहीं होना चाहिए, बल्कि विचार करना चाहिए कि यह तो परीक्षा का अवसर है। इस परीक्षा में पास होने पर फिर कभी दुख आते ही नहीं। संकट के समय समता और धीरज रखना चाहिए। दुखी होने से दुख दूर नहीं होता। यह भी ध्यान में रखो कि दुखों को सहे बिना कोई महा पुरुष नहीं बन सकता।

—रिषभदास के प्यार।

: ११ :

काजी साहब

प्यारे राजा बेटा,

आज तुम्हें अरब देश के एक काजी साहब की कहानी लिख रहा हूँ। जानते हो अरबस्थान कहाँ है? वह पश्चिम की तरफ है। बम्बई की तरफ जो अरब समुद्र है, उसका नाम अरब देश से ही बना है। पश्चिम दिशा वह है जिधर सूरज डूबता है। मुसलमानों का धर्म इसी अरब देश से शुरू हुआ है। इसके संस्थापक या चलाने वाले मुहम्मद पैगम्बर थे। इनके तीर्थ-स्थान मक्का, मदीना तथा काबा अरब में ही हैं। मुसलमान लोग पश्चिम की तरफ मुँह करके नमाज इसलिए करते हैं कि काबा के पत्थर का मन्दिर मक्का में है और मक्का पश्चिम में है। यह मुसलमान या इस्लाम धर्म करीब बारह सौ वर्ष पहले स्थापित हुआ है। यह अब दुनिया के बड़े-बड़े धर्मों में से एक है।

अरब देश में रेती ही रेती है। वहाँ पानी बहुत कम है। वहाँ के लोग ऊँटों से सवारी, खेती, गाड़ी आदि के काम लेते हैं। ऊँट रेती में खूब और अच्छा चलता है। उसे पानी भी ज्यादा नहीं लगता। कहते हैं, महीना-महीना भर ऊँट पानी नहीं पीता। मारवाड़ (राजस्थान) में भी बहुत ऊँट हैं। रेतीली भूमि में ऊँट बड़ा उपयोगी जानवर होता है।

अरबस्थान की राजधानी मक्का में एक काजी साहब रहते थे। वे वहाँ के न्यायाधीश थे। एक दिन उनकी अदालत यानी कचहरी में एक मुकदमा आया। एक आदमी पर यह गुनाह लगाया गया था कि उसने डाका डालकर एक अरबी परिवार को लूट कर मार डाला है। गवाहियों की जाँच हुई। उस आदमी पर गुनाह साबित हो गया। उसे अपराधी ठहराकर मौत की सजा सुना दी गई। सजा सुनाने के बाद उससे कहा गया कि तुम्हें कुछ कहना हो तो कह सकते हो।

उसने कहा :

"जनाब, गवाहियों से साबित हो गया कि मैंने गुनाह किया है। लेकिन मैं बेगुनाह हूँ, इसे खुदा जानता है। अब सजा तो मुझे हो ही गई है; लेकिन मेरी एक विनती या अर्ज है। मुझे पन्द्रह दिन के लिए घर का इंतजाम करने को जाने दिया जाय।' काजी साहब ने कहा—"भाई, तुम तभी जा सकते हो, जब दूसरा कोई तुम्हारा जामीन रहे। मुद्दत के भीतर न आने से तुम्हारे बदले उसे सूलीपर चढ़ने को तैयार रहना चाहिए।" उसने आँखों में आँसू भरकर कहा—"साहब, मेरी यहाँ कोई जान पहचान नहीं है। मुझपर यह तोहमत यानी झूठा दोष आ गया है, यह खुदा की मर्जी! पर मुझ पर इतनी दया कीजिए कि मैं अपने बीवी-बच्चों से मिल सकूँ, उनकी कुछ तजवीज कर सकूँ। मुझपर नहीं, मेरे छोटे-छोटे बच्चों और अनाथ बीवी पर रहम (दया) कीजिए। मेरे घर में दूसरा कोई देख-भाल करनेवाला नहीं है।"

काजी साहब दयालु थे। उन्हें दया आ गई। उन्होंने कहा, "जाओ, आज से ठीक पन्द्रहवें दिन दोपहर को सूरज सिरपर आने तक हाजिर हो जाना। मैं तुम्हारा जामीन रहता हूँ।" वह आदमी काजी साहब को धन्यवाद देकर घर चला गया। उसने सारे कारोबार यानी लेन-देन, व्यवहार और व्यापार की व्यवस्था की। अपनी बीबी को सब बातें बताईं और जाने की तैयारी करने लगा। एक तेज सांड़नी (ऊँटनी) को तैयार रखा, बच्चों को प्यार किया और बीबी से बिदा लेने गया तो वह जोर-जोर से रोने लगी। उसका अपने पति (शौहर) पर बहुत प्रेम था। अब उसका पति वापस नहीं लौटेगा, इसका उसे बहुत दुख हुआ और वह शोक करने लगी। उसका यह हृदय पिघलानेवाला दुख और शोक देखकर उसे वह समझाने लगा, सान्त्वना देने लगा। इसमें कुछ देरी हो गई। इसके बाद वह सांड़नी पर सवार होकर चल दिया।

उधर मक्का में दोपहर को सूली पर चढ़ने का समय हो गया, लेकिन अपराधी का पता न था। यह देखकर काजी साहब ने सिपाहियों से कहा कि आप लोग सूली की तैयारी करें! वह नहीं आया तो क्या, उसका जामीन तो हाजिर है। लोग हैरान हो गए। सारे शहर में तहलका मच गया। लोग दुखी होकर रोने लगे। अपने प्यारे काजी को दूसरे के लिए मरने की नौबत आई, यह बात लोगों को अच्छी नहीं लगी। वे काजी साहब के पास जाकर बोले, यह तो अन्याय है, आप बे-गुनाह हैं, आपको सूली पर

नहीं चढ़ने देंगे। काजी साहब ने कहा—"दोस्तो, आपकी मुझपर मुहब्बत यानी प्रेम है, इसीलिए आप कानून को तोड़ना चाहते हैं। लेकिन यह ठीक नहीं। चाहे जितना बड़ा और प्यारा आदमी हो, उसे कानून के आगे सिर झुकाना ही चाहिए। कानून के मुताबिक सबको चलना ही चाहिए। अगर वैसा न किया तो याद रखो, हम सब बर्बाद हो जायेंगे। अपने प्यारे पैगम्बर साहब ने जो कहा है और अपनी भलाई के लिए जो कानून-नियम बनाए हैं, वे नहीं चलेंगे और उनकी की हुई मेहनत मिट्टी में मिल जावेगी। न्याय-इन्साफ में कोई छोटा बड़ा नहीं होता। इन्साफ इन्साफ ही है।" इतना कह कर काजी साहब सूली पर चढ़ ही रहे थे कि एक आदमी बेतहाशा बड़े जोर से सांड़नी दौड़ाता हुआ आ रहा था और चिल्ला रहा था "ठहरिये ! ठहरिये !! मैं आ रहा हूँ।" लोगों ने देखा कि सचमुच वही आदमी है जिसे सूली पर चढ़ाना था।

लोगों ने काजी साहब को सूली के तख्ते से उतारा। वे उतरते ही उस आदमी से गले मिले। और सब लोगों की तरफ मुँह करके उन्होंने ऊँची आवाज में कहा—"भाइयो, जो आदमी अपने वादे का—कही हुई बात का इतना खयाल रखता है, इतना ईमानदार हो, वह डाका नहीं डाल सकता। उसके हाथों से ऐसा बुरा काम नहीं हो सकता, ऐसा मुझे यकीन—विश्वास है। इसलिए यदि आप लोगों की इजाजत हो तो मैं इसे रिहा कर देता हूँ—छोड़ देता हूँ। सभी ने एक आवाज से कहा—छोड़ दीजिए, छोड़ दीजिए! यह बेकसूर है।

काजी साहब ने उस आदमी को छोड़ दिया। जब वह घर जाकर अपने बीबी-बच्चों से मिला, तो उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उन्हें उतनी ही खुशी हुई जितनी हमारे नागपुर जेल से छूटनेपर तुम्हें हम से मिलकर होगी।

—रिषभदास के प्यार।

एक रूप हिन्दू तुरुक, दूजी दशा न कोय।
मन की दुविधा मानकर, भये एक सौं दोय॥

—बनारसीदास

जग में बैरी कोई नहीं, जो मन सीतल होय।
या आपा को डारि दै, दया करै सब कोय॥

जैसा अन-जल खाइये, तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिये, तैसी बानी सोय॥

गारी ही सौं ऊपजै, कलह, कष्ट औ मीच।
हारि चलै सो साधु है, लागि मरै सो नीच॥

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर॥

कछु कहि नीच न छेड़िये, भलो न वाको संग।
पाथर डारै कीच में, उछरि बिगारै अंग॥

: १२ :

जॉर्ज वॉशिंग्टन

प्यारे राजा बेटा,

क्या यह ठीक है कि तुमको कहानी सुनने का शौक लगा है? जब तुम्हारी बहन कहानी कहती है तब तुम जोश में आकर मस्ती करने लगते हो और उसे तंग भी करने लगते हो। तुम्हारा मस्ती करना और उछलना कूदना या जोश में आना बुरा नहीं है, लेकिन बड़ी बहन को तंग करना क्या अच्छा है? तुमही बताओ, तुमको अगर कोई तंग करे तो क्या अच्छा लगेगा? जैसे किसी से तंग आना तुमको अच्छा नहीं लगता उसी तरह तुम्हारी बड़ी बहन को भी पसंद नहीं आवेगा। सो, तुम आइंदा उसे सताओगे नहीं, ऐसी मैं उम्मीद करता हूँ।

बड़े आदमियों की कहानियाँ सुनते समय तुमको बड़ा आदमी बनने की इच्छा होती है न? आदमी बड़ा कैसे बनता है इसकी मैं तुमको एक कहानी लिखता हूँ। तुम्हारे जैसा एक लड़का था जिसका नाम था **जॉर्ज वॉशिंग्टन**। वह अमेरिका में रहता था। अमेरिका कहाँ है? अपने नीचे, जिसे पहले पाताल-लोक कहते थे। जब अपने यहाँ सूरज उगता है तब वहाँ रात पड़ती है और जब वहाँ सूरज निकलता है तब अपने यहाँ रात होने लगती है। वह

देश बड़ा ही सुहावना है। वहाँ के लोग सुखी हैं; वहाँ के मकान ५०-६० मंजिल के होते हैं। ऐसे मकानोंपर चढ़ने के लिये बिजली के झूले (लिफ्ट) रहते हैं। अमेरिका में हर दस आदमी के पीछे एक मोटर है। दुनिया की एक-तिहाई मोटरें अमेरिका में हैं। वहाँ कोई भूखा नहीं मरता, सब लोग खा-पीकर सुखी हैं। वह देश सुखी कैसे हुआ? जॉर्ज वॉशिंग्टन की वजह से। पहले वह देश भी अपनी तरह ही अंग्रेजों के अधीन था। जॉर्ज वॉशिंग्टन ने अमेरिका को स्वाधीन किया। इससे वहाँ के लोगों को अपनी तरक्की करने का मौका मिला। इसलिये जॉर्ज वॉशिंग्टन की वे पूजा करते हैं। उसके गुणों को वे याद करते हैं।

उसकी किसी वर्ष-गाँठ के अवसरपर उसके पिता ने उसे एक छोटी-सी कुल्हाड़ी इनाम में दी। तुम्हारी माँ भी तुम्हारी वर्ष-गाँठ यानी जन्म-दिन मनाती है न? उस दिन तुमको नये कपड़े पहनाकर अच्छा भोजन खिलाया जाता है। कुल्हाड़ी मिलने पर वॉशिंग्टन बहुत खुश हुआ। वह अपने पिता के बगीचे में गया। कुल्हाड़ी तो उसके पास थी ही। एक सुंदर छोटे से पौधेपर उसने कुल्हाड़ी चलाई और उसकी छाल निकाल ली। उससे पौधा मुरझा गया। दूसरे दिन उसके पिता बगीचे में गये। उस पौधे की दुर्दशा देखकर उन्हें बहुत दुःख हुआ क्योंकि वह उनका प्यारा पौधा था। जाँच-पड़ताल की। नौकरों से पूछा। जब वॉशिंग्टन को यह मालूम हुआ तो वह तुरंत पिता के पास जाकर बोला "पिताजी,

इस पौधे को मैंने छीला है। यह मेरी गलती हुई। मुझे मालूम न था कि पौधे को इस तरह नुकसान पहुँचेगा, इसलिये क्षमा करें।" उसने पिताजी के गुस्से के डर से झूठ न बोलकर अपनी भूल मंजूर कर ली। इससे उसके पिता बहुत खुश हुए। और उसको उन्होंने गोद में उठाकर चूमा और शाबासी दी।

वह बालक इसी तरह सचाई को अपनाकर बड़ा आदमी बना और अपने देश के लिये लड़कर आज़ादी प्राप्त की और उसे सुखी किया। जिन बच्चों को बड़ा बनना हो उन्हें जॉर्ज वॉशिंग्टन की तरह निडर बनकर सच बोलने की आदत डालनी चाहिये।

— रिषभदास के प्यार।

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै सांच है, ताके हिरदै आप॥
कबिरा संगत साधुकी, ज्यों गंधीका बास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी वास सुवास॥
जो तोकौं कांटा बुवै, ताहि बोय तू फूल।
तोको फूल के फूल हैं, वाको है तिरसूल॥
कबिरा आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगा सुख होत है, और ठगे दुख होय॥

—कबीर

: १३ :

होली

प्यारे राजा बेटा,

सामने होली का त्यौहार आ रहा है। तुमने लोगों को होली खेलते हुए देखा तो होगा। अपने-अपने तरीके से हँसी-विनोद करते हुए सब लोग यह त्यौहार मनाते हैं। कोई गीत गाते हैं, कोई रंग डालते हैं, कोई नाचते, गालियाँ देते, ढोलक बजाते और कीचड़ उछालते हैं। फाल्गुन सुदी १५ के दिन लकड़ी और कण्डे जमा कर के आग लगाई जाती और पूजा की जाती है। अब तुम शायद यह जानना चाहोगे कि यह त्यौहार क्यों मनाया जाता है?

तुमने अपनी माँ से प्रल्हाद की कथा सुनी है न? भगवान् के बाल-भक्तों में प्रल्हाद का बहुत ऊँचा स्थान है। तुम्हें यह कहानी बड़ी अच्छी लगी है, इसीलिए लिख रहा हूँ।

पुराणों में कथा है कि प्राचीन समय में हिरण्यकश्यपु नामक एक राजा था। यह बहुत ही दुष्ट और क्रोधी स्वभाव का था। अच्छे और भलाई के काम उसे पसन्द नहीं आते थे। भले आदमियों और सन्तों से उसे चिढ़ थी। क्योंकि यह प्रजा को अपने सुखों के लिए तकलीफ दिया करता था और सन्त लोग इसकी इच्छा के विरुद्ध रहते और वैसी ही भावना का प्रचार करते। यहाँ तक कि हिरण्यकश्यपु ने अपने राज्य में भगवान् का नाम लेने की भी मनाही कर दी।

लेकिन होनहार की बातें कि उसका बेटा ही भगवान् का भक्त निकला। उसका नाम प्रल्हाद था। यह बड़ा सद्गुणी, प्रेमी और रूपवान बालक था। ज्यों-ज्यों प्रल्हाद की आयु बढ़ती गई त्यों त्यों उसका भगवत्-प्रेम और परोपकार की वृत्ति बढ़ती गई।

हिरण्यकश्यपु को यह सब देखकर बहुत दुख और क्रोध हुआ। पहले उसने प्रल्हाद को बुलाकर कहा कि "बेटा, देखो, मैं तुम्हें हित की बात कहता हूँ; लेकिन तुम समझते नहीं हो। भगवान् तो हमारा दुश्मन है। उसका नाम लेने से हमारा यह राज्य और प्रभाव टिका नहीं रह सकता। आज हमें यह आराम और सुख प्रजा को दुख देकर उससे मिहनत करवाकर और अपनी सत्ता के बल पर ही मिल रहा है। यदि ऐसा न करें तो अपने को सुख कैसे मिल सकता है? न्याय और प्रेम की बातें वे ही करते हैं जिनपर जिम्मेवारियाँ नहीं होतीं या जो व्यावहारिक नहीं होते। इसलिए मैं तुम्हें समझाकर कहता हूँ कि अब तुम समझदार हो चले हो, भगवान् आदि का नाम लेना छोड़ दो!"

प्रल्हाद यद्यपि छोटा था, तथापि उसमें विचार करने की योग्यता थी। उसने कहा "पिताजी आपने जो कहा उसे मैंने सुन लिया, लेकिन जैसे मैं आपको प्यारा हूँ वैसे ही दूसरे बच्चे अपने माता-पिता को प्यारे हैं। मैं जब ऐसे लोगों से मिलता हूँ तब वे लोग अपना दुखड़ा रोते हुए कहते हैं कि हमारा सारा समय तुम्हारे पिताजी के कामों में चला जाता है इससे अपने बाल-बच्चों की तरफ

हम कुछ भी ध्यान नहीं दे पाते। इसलिये उन्हें न पूरा खाने को मिलता है न पूरा पहनने को मिलता है।"

इसपर हिरण्यकश्यपु ने कहा 'हमें अपने सुख से मतलब है, दूसरों की चिन्ता हम कहाँ तक करें।'

प्रल्हाद ने कहा: 'राजा प्रजा का पिता होता है। प्रजा की भलाई में ही राजा की भलाई है। प्रजा सुखी होगी तो राजा दुखी नहीं रह सकता। आज वे लोग भगवान् का नाम इसीलिये लेते हैं कि भगवान दयालु होते हैं। वे आपका भी नाम ले सकते हैं पर तभी, जब आप अुनके सुख की चिन्ता करेंगे।'

इसपर हिरण्यकश्यपु ने क्रोध में आकर कहा कि 'बस बहुत हो गया। छोटे मुँह बड़ी बात करना तुम्हें शोभा नहीं देता। मैं राजा हूँ, मेरे हाथ में शक्ति है। जो मेरी आज्ञा नहीं मानेगा उसका नाश कर दूँगा।'

प्रल्हाद ने और भी दृढ़ता से कहा: 'पिताजी, जरा ठंडे दिल से विचार कीजिये। लोगों को दुख देकर आप बहुत हानि उठायेंगे।'

"तू भगवान् का नाम लेना बन्द करता है या नहीं? मेरी आज्ञा न मानने पर तेरा विनाश मेरे हाथों हो सकता है।" हिरण्यकश्यपु ने कहा।

"पिताजी मैं आपके हाथों में हूँ। आप चाहे जो कर सकते हैं, लेकिन मैं भगवान् का नाम लेना बन्द नहीं कर सकता।" प्रल्हाद ने जोर देकर कहा।

प्रल्हाद की बातों से हिरण्यकश्यपु को बहुत क्रोध आया और नौकरों से कहा कि इसे नदी में डुबाकर चले आओ।

प्रत्यक्ष में राजा की आज्ञा को मानकर वे प्रल्हाद को ले गए, परन्तु उसे नदी में नहीं डुबा सके---उनका हृदय प्रेम से भर आया। अब प्रल्हाद वहाँ से फिर लौट आया। उसे देखकर राजा को बहुत बुरा लगा। उसने अपने विश्वस्त अनुचरों से कहा कि जाओ इसे ऊँचे पहाड़ पर से गिरा दो। लेकिन प्रल्हाद जैसे निर्दोष और प्रेमी बालक को गिराने की हिम्मत नहीं हुई। वे उसे जंगल में छोड़कर आगए। पूछने पर उन्होंने झूठ-मूठ ही कह दिया कि प्रल्हाद को गिरा दिया है।

कुछ दिनों बाद प्रल्हाद फिर हाजिर हो गया। लोगों में बातें फैल गई कि भगवान् ने अपने भक्त को नदी में डूबने से और पहाड़ पर से गिरने से बचा लिया---झेल लिया। तुम जानते हो इसका क्या अर्थ है ? भगवान् ने बचा लिया इसका अर्थ यह है कि उसके हृदय की सचाई और प्रेम ने ही उसकी रक्षा की। इसी कारण बालक प्रल्हाद के प्रति जनता में प्रेम बढ़ने लगा और हिरण्यकश्यपु के प्रति तिरस्कार।

हिरण्यकश्यपु ने विचार किया कि अब मुझे ही इसके मरवाने की व्यवस्था करनी चाहिये। निदान उसने एक हाथी बुलवाया और प्रल्हाद के शरीर पर से उसे ले जाने की महावत को आज्ञा दी। लेकिन हाथी टस से मस नहीं हुआ। जो सब पर प्रेम करता है, उस पर हाथी कैसे चलेगा ! आखिर उसने अपनी बहिन होलिका

से कहा कि वह प्रल्हाद को अपनी गोदी में लेकर बैठ जावे ताकि प्रल्हाद जल जाए। होलिका के पास ऐसी दवाई थी कि उसका लेप करने से आग का असर नहीं होता था। ऐसा उसने कई अपराधियों को जलाते समय किया। दवाई का लेप करने से वह बच जाती थी। लेकिन प्रल्हाद को गोदी में लेते समय उसके विचार बदल गए। दवाई का लेप प्रल्हाद को कर दिया जिससे वह तो जल गई और प्रल्हाद बच गया। यह बात किसी को मालूम नहीं हो सकी थी। इसलिए लोगों ने सदा होने वाले काण्ड के विरुद्ध दृश्य देख-कर कहा कि प्रल्हाद को भगवान् ने बचा लिया। जब लोगों को थोड़ी देर बाद इसका कारण मालूम हुआ तो होलिका की पूजा होने लगी। क्योंकि प्रल्हाद को बचाने के लिए वह स्वयं जल मरी!

प्रल्हाद के बच जाने से सब लोग हँसने-उछलने लगे। उल्लास में आने पर आदमी आपे के बाहर हो जाता है और कुछ अनुचित काम भी करने लग जाता है।

बेटा, अच्छे लोगों का प्रत्येक काम अच्छा होता है और बुरों का बुरा। यही बात त्यौहार का आनंद उठाने के बारे में है। तुमने देखा होगा कि इस त्यौहार पर कुछ लोग एक दूसरे पर राख-कीचड़ आदि उछालते हैं, कुछ रंग-गुलाल उड़ाते हैं, कुछ पानी से सन्तोष मानते हैं। कुछ लोगों की आदत दूसरों को कष्ट देकर आनन्द पाने की होती है, कुछ बराबरी के मजाक में आनन्द लेते हैं, कुछ लोगों को दूसरों की भलाई करने में आनन्द आता है। अब तुम ही

बताओ राख-कीचड़ उछालना और गालियाँ देना क्या अच्छा है ? जिसे हम अपने लिए बुरा समझते हैं, वह दूसरों के लिए कैसे अच्छा हो जायगा ! रंग उड़ाना बुरा नहीं है, परन्तु देश के धन का दुरुपयोग करना तो अच्छा नहीं है। लोगों को पहनने को वस्त्र नहीं मिलता और हम कपड़े खराब करें, यह तो ठीक नहीं है। तो फिर तुम कहोगे कि मजा कैसे आएगा ?

होली के समय गर्मी की मौसम शुरू हो जाती है। ठंडा पानी बड़ा अच्छा लगता है। शुद्ध और शीतल पानी से खेलकर गर्मी की मौसम का स्वागत करना चाहिए। गंदी गालियाँ सुनने-सुनाने और फिरते रहने से तो उस दिन रेडियो पर होली के गाने और उपदेशों को सुनना अच्छा है।

उस दिन तुमको भक्त-वर प्रल्हाद की कथा को याद कर वैसा बनने की कोशिश करनी चाहिए। प्रल्हाद को हुए हजारों वर्ष हो गए, लेकिन लोग उसे आज भी उसी श्रद्धा से याद करते हैं। क्या लोग उनकी याद करते हैं जो भगवान् के या प्रेम और सचाई के भक्त नहीं होते ?

अब शायद तुम जान गए कि प्रल्हाद कौन था। मैं आशा करता हूँ कि तुम दिन-पर-दिन वैसा बनने की कोशिश करोगे। सद्गुणों की सब जगह और सदा पूजा होती है।

—रिषभदास के प्यार

: १४ :

राखी

प्यारे राजा बेटा,

देखो, सामने राखी आ रही है। तुम्हारी बहनें तुम्हें राखी बाँधेंगी। उस दिन घर-घर में त्यौहार मनाया जावेगा। खाने के लिए मीठी चीज़ें बनेंगी। तुम्हें और तुम्हारी बहनों को नए कपड़े पहनाए जावेंगे। राखी बाँधते समय बहनें तुम्हारी मंगल-कामना करेंगी। उनकी अभिलाषा होगी कि तुम्हारी उम्र, शक्ति और ऐश्वर्य बढ़े। भाई के नाते तुम उन्हें क्या दोगे? मंगल-कामना करने वाली बहनों को तुम आश्वासन-वचन दो कि 'बहनो, जब तुम बुलाओगी, मैं तुम्हारी सहायता के लिए तैयार रहूँगा।' राखी का यह पवित्र धागा तुम भाई-बहनों को स्नेह-सूत्र में बाँधेगा। यह कितना अच्छा त्योहार है!

बेटा, यह बहुत पुराना त्यौहार है। राखी की कथाएँ पुराणों में मिलती हैं। इतिहास में भी ऐसी घटनाओं का उल्लेख आता है। लेकिन सबका सार यही है कि अन्याय और संकट से रक्षा करना प्रत्येक आदमी का धर्म है, फ़र्ज़ है। लेकिन राखी में भाई-बहन का सम्बन्ध कैसे आया, इसकी एक इतिहास प्रसिद्ध कहानी यहाँ देता हूँ।

तुमने राजपूत जाति का नाम तो सुना है न? हम लोग भी राजपूताने के ही हैं। राजपूताने में छोटे-छोटे कई राज्य और राजा हो गये हैं। राजपूत जाति लड़ने में बड़ी बहादुर मानी जाती है। छोटे-छोटे राज्य होने से यहाँ हर समय लड़ाई की शंका रहती थी और संकट भी आया करते थे। जब कोई राजा मर जाता और उसके कोई लड़का नहीं होता तो रानी ही राज्य चलाती थी। ऐसी हालत में जब दूसरा कोई लोभी राजा शत्रु बनकर उसके राज्य को जीतना चाहता तब ये राजपूत बहनें किसीको भाई मानकर राखी भेजतीं और उसे अपनी मदद के लिए बुलाती थीं। ऐसी राखियाँ अधिकतर अपनी जाति में ही भेजी जाती थीं, परंतु दूसरी जाति और धर्मवालों को भी मौका आने पर भेजी जाती थीं।

चार-सौ साल पहले की मेवाड़ की बात है। भारत के नक्शे को सामने रखकर मेवाड़ को देखना। यह राजपूताने में एक प्रसिद्ध राज्य है। मेवाड़ का राज-वंश राजपूतों में बहुत नामी, ऊँचा और प्रतिष्ठित माना जाता था, क्योंकि ये लोग बड़े वीर, बहादुर और बात के पक्के होते थे। ये मुसलमान बादशाहों के आगे कभी नहीं झुके। अन्तिम घड़ी तक अनेक मुसीबतें उठा-उठाकर भी लड़ते रहते और लड़ते-लड़ते ही मर जाते थे, परंतु सिर झुकाने को सबसे बड़ा पाप समझते थे। उस समय देश में मुसलमानों का राज्य और शक्ति बहुत बढ़ गई थी। कई राजपूत राजाओं ने उनकी अधीनता मंजूर कर ली और अपनी बहन-बेटियों की शादियाँ भी

उन बादशाहों से कर दी। लेकिन मेवाड़ का सिर हमेशा ऊँचा ही रहा। मेवाड़ी राजपूत अपनी आन-बान के लिये हँसते-हँसते मर जाने वाले वीर थे।

तो अब तुम्हें कहानी सुनने की उत्सुकता होगी।

मेवाड़ के राणा संग्रामसिंह की मृत्यु के समय उनके पुत्र उदयसिंह की अवस्था बहुत छोटी थी। संग्रामसिंह का एक दासी-पुत्र भी था। उस समय राजा लोग दासियाँ भी रखते थे और इनसे उत्पन्न पुत्र दासी-पुत्र कहलाते थे। बनवीर ऐसा ही एक दासी-पुत्र था। संग्रामसिंह की मृत्यु के बाद राज्य-वंश में सवाल उठा कि अब गद्दी पर किसे बिठाया जाय—उदयसिंह तो दूध-पीता बालक था। अतएव सरदारों ने तय किया कि उदयसिंह के बड़े होने तक बनवीर को राज्यगद्दीपर बिठाया जाय। लेकिन बनवीर बहुत ही क्रूर, दुष्ट और नीच था। उसने सोचा कि यदि मैं उदयसिंह को मार डालूँ तो अच्छा रहेगा क्योंकि यदि वह जिन्दा रहा तो मुझे राज्य त्याग देना होगा। यह सोच वह तलवार लेकर रनवास में गया। लेकिन यह खबर वहाँ पहले ही पहुँच गई थी। उदयसिंह पन्ना नामक दाई के पास पल रहा था। पन्ना बड़ी स्वामी-भक्त और राज-भक्त थी। उसने खबर पाते ही हाथों-हाथ एक टोकनी में उदयसिंह को किले के बाहर भेज दिया और उसके स्थान पर अपने लड़के को सुला दिया। बनवीर ने आते ही पन्ना से पूछा तो उसने अंगुली से अपने पुत्र की ओर संकेत किया कि यही उदयसिंह है। बनवीर ने अपने निश्चय के अनुसार उसे मार डाला और चला गया। अपने पुत्र

को अपनी आँखों के आगे मरते देखकर भी पन्ना ने धीरज नहीं खोया। कितनी पवित्र स्वामीभक्ति थी उसमें। धन्य हैं ऐसी माताएँ

बनवीर की क्रूरता और नीचता से सभी सरदार नाराज हो गए। राज्य में अव्यवस्था फैल गई, अत्याचार बढ़ गए। व्यवस्था और एकता खतम हो गई। यह समाचार पाकर गुजरात का सुल्तान बहादुरशाह बहुत खुश हुआ। वह अहमदाबाद में, जिसे कर्णावती कहते थे, रहता था। उसने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी।

उस समय चित्तौड़ मेवाड़ की राजधानी थी। चित्तौड़ का किला बहुत प्रसिद्ध है। वह पहाड़ पर है, इससे दुश्मन को उसे जीतने में काफी मेहनत पड़ती है। बहादुर मेवाड़ियों का सामना करना कोई हँसी-खेल नहीं था, इसमें दुश्मन को बहुत हानि उठानी पड़ती थी। पर इस बार राजपूतों में संगठन न देखकर राजमाता कर्मावती ने दिल्ली के बादशाह हुमायुँ के पास राखी भेजकर मदद के लिए संदेश दिया।

इधर गुजरात का सुल्तान जल्दी आ पहुँचा। राजपूतों ने सामना किया, लेकिन आपसी कलह के कारण उनमें पहले जैसी ताकत नहीं रह गई थी। यद्यपि हुमायुँ के दूत ने आकर कह दिया कि वह जल्दी ही मदद को आ रहे हैं, पर यहाँ तो एक-एक दिन मुश्किल जा रहा था। शत्रु की सेना आगे बढ़ रही थी। इसलिए निरुपाय होकर सबने तैयारी की और कर्मावती ने अपने को सबके

आगे कर चिता में आग लगाकर उसमें हँसी-खुशी बैठकर जौहर हो गई। ऐसे जलने को 'जौहर' कहते हैं। धर्म बचाने के लिए ऐसे जौहर कई बार हुए हैं। इधर रानियों ने जौहर किया और उधर राजपूत वीर केशरिया बाने में लड़ते-लड़ते वीर-गति को प्राप्त हुए। युद्ध करते हुए मरने को वीर-गति कहते हैं।

यह सब हुआ कि हुमायुँ फौज लेकर पहुँच गया। उसे यह हाल जानकर बहुत दुख हुआ। सबसे पहले उसने युद्ध में बहादुर-शाह को हराकर, उससे चित्तोड़ लेकर उदयसिंह को अपना भानजा मानकर गद्दीपर बिठा दिया। इसके बाद उसने चिता की भस्म अपने माथेपर लगाई और स्वर्गस्थ कर्मावती से क्षमा माँगकर अपने स्थान पर लौट गया।

अपने देश में ऐसे-ऐसे उदार लोग भी होते रहे हैं। ऐसे लोग धर्म या जाति का विचार न करके अपनी आन-बान के लिए मर मिटते थे। तुम भी ऐसे ही उदार बनोगे न ?

—रिषभदास के प्यार।

: १५ :

१५ अगस्त

प्यारे राजा बेटा,

कल १५ अगस्त है। अब अपना देश आज़ाद हो रहा है। नगर में चारों तरफ जो चहल-पहल और खुशियाँ दीख रही हैं, इसका क्या कारण है? अब तक अपना देश परतंत्र यानी गुलाम था। अब हम गुलामी से दूर हो रहे हैं, इसी से सबको खुशी हो रही है। एक कैदी को जेल से छूटने पर जैसा आनन्द होता है वैसा ही आनन्द आज हम सबको हो रहा है। अब इस देश में जनता का ही राज्य होगा, अुसका ही कारोबार होगा!

तुम कहोगे, हम कैसे गुलाम थे? गुलाम या नौकर तो वह होता है जो खूब काम करता है और मालिक को कमा कर देता है। फिर भी आराम से नहीं रह पाता। सुख से खाने-पीने को नहीं मिलता। लेकिन कोई ऐसा तो नहीं दीखता।

नहीं बेटा, ऐसी बात नहीं है। हिंदुस्तान पूरा गुलाम ही था। क्या तुम नहीं समझते कि हिंदुस्तान पर अंग्रेज लोग राज्य करते थे और टैक्सों, व्यापारों आदि के जरिए हमारी कमाई का बहुत ज्यादा भाग वे अपने देश में ले जाते तथा खुद के लिए खर्च करते थे। हिन्दुस्तान के समझदार लोगों ने इस बात को समझ

लिया और देश को आज़ाद करने की कोशिश में लग गये। कांग्रेस का नाम तुमने सुना है न? इस संस्था में काम करने वाले पूज्य बापू, डॉ० राजेन्द्रप्रसादजी, पं० जवाहरलालजी, सरदार वल्लभभाई पटेल आदि अनेक नेता हैं। इन लोगों ने देश को आजाद करने में अपनी धन-सम्पत्ति का त्याग तो किया ही, लेकिन अनेक प्रकार की तकलीफें भी उन्हें सहनी पड़ीं। कई बार उन्हें जेल भेजा गया, पीटा गया, हथकड़ियाँ पहनाई गईं। ऐसे हजारों देशभक्तों को देश-सेवा में अपने सुखों का बलिदान करना पड़ा। कई तो मौत के मुहँ में पहुँचा दिए गए। कइयों की जायदाद लूट ली गई, जप्त कर ली गई। पचास वर्षों के प्रयत्न के बाद इन सब कुर्बानियों का फल आज मिल रहा है। इसी की सबको खुशी है।

फिर भी दूसरे देशों की अपेक्षा अपने देश को बहुत कम मुसीबतें उठानी पड़ी हैं। दूसरे देशों के इतिहास भयंकर खून-खराबी, लड़ाई, मार-काट से भरे हुए हैं। लेकिन पूज्य बापूजी के सत्य (सचाई) और अहिंसा (प्रेम) के कारण बड़ी सरलता से आज़ादी मिल गई। आज़ादी तो मिल गई, लेकिन इसे टिकाए रखना सबसे बड़ी बात है। इतनी योग्यता हम सब में होनी चाहिए। यदि हम सब मूर्ख या अयोग्य रहे तो हम आजादी का सुख नहीं पा सकेंगे। एक आदमी को हीरा मिला, लेकिन मूर्खता के कारण कौए को उड़ाने के लिए फेंक दिया। ऐसा अगर हम करेंगे तो दूसरे हमारी आज़ादी को छीन लेंगे।

तुम अभी छोटे हो, इसलिए देश की बड़ी-बड़ी बातें तो जैसे-जैसे बड़े होओगे, वैसे-वैसे समझते रहोगे; लेकिन अभी तुम्हारे योग्य कुछ बातें बतलाना जरूरी मालूम होता है।

सब से पहले तुम्हें यह समझ लेना चाहिए कि देश की प्रत्येक चीज तुम्हारी है, तुम्हारे भाइयों की है; यानी देश के सब लोगों की है। तुम्हारे समान ही उनपर सब का अधिकार है। पहले तो तुम किसी चीज़ का नुकसान कर भी लेते तो कोई कुछ न कहता, बल्कि खुशी होती कि हमने दूसरे की चीज का नुकसान किया। पर अब वैसा करना ठीक नहीं है। क्योंकि अब देश के नुकसान में तुम्हारा भी नुकसान है।

कई लोग पटाखों और खिलौनों में बहुत रुपया बर्बाद कर देते हैं। इससे देश का धन दूसरे देशों में जाता और हम गरीब बनते हैं। थोड़ी देर की हँसी-मजाक के लिए इस तरह पैसा बर्बाद करना अच्छा नहीं है। किसी भी चीज़ का उपयोग करते समय सोचना चाहिए कि उससे अपना और देश का कितना लाभ होता है। कई बच्चों को दो आने का दूध पीने को नहीं मिलता और कुछ दो दो रुपये के खिलौने बर्बाद कर देवें, क्या यह ठीक है?

इसी तरह खाने-पीने की चीज़ों में भी विचार करना चाहिए। कई लड़के रात-दिन मिठाई या तेल-मिर्च की चीजें खाने के लिए हठ करते हैं, खाते हैं और बीमार पड़ते रहते हैं। लेकिन बहुत-से बालक गरीबी के कारण रूखी-सूखी रोटी भी मुश्किल से पाते हैं। इस बारे में तुम्हें इतनी बातें ध्यान में रखनी चाहिए :

१. भोजन सादा और सात्त्विक करना,

२. भोजन समय पर और आनन्द से करना,

३. जितनी भूख हो उससे ज्यादा नहीं खाना,

४. जहाँ तक हो रात को नहीं खाना,

५. मीठी और चरपरी चीजें अधिक नहीं खाना,

६. बाजार में होटल की चीजें नहीं खाना,

७. जितना खाना हो उतना ही लेना। थाली में झूठा नहीं छोड़ना।

लो, झूठन के बारे में तुम्हें एक गणित बताता हूँ। अगर तुम एक बार के भोजन में एक छटाक यानी ५ तोला अनाज झूठा छोड़ो तो तीस दिन के ६० बार के भोजन में पौनेचार सेर अनाज होता है। इसे यदि १२ महीनों से गुणित किया जाय तो ४५ सेर होता है। एक आदमी एक महीने में ज्यादा-से-ज्यादा १५ सेर अनाज खाता है। यानी बारह महीने की झूठन से तीन महीने की खूराक नष्ट हो जाती है। यह कितना बड़ा नुकसान है। एक विद्वान् ने कहा है कि 'हमें खाने के लिए नहीं जीना है, बल्कि हमें जीने के लिए खाना चाहिए।' तुम्हें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि हमारे प्रत्येक कौर में—ग्रास में—अपनी, परिवार की, समाज और देश की अनेकों समस्याएँ हैं। एक विचारक का कहना है कि 'भोजन को पीना चाहिए और पानी को खाना चाहिए।' यानी चबाते-चबाते भोजन मुँह में पानी जैसा बन जावे और पानी

धीरे धीरे ऐसे पीना चाहिए मानों भोजन कर रहे हों। इससे बीमारी पास नहीं आती। शरीर हमेशा स्वस्थ रहता है।

जिस तरह नौकर को छुट्टी में सुख और आराम मालूम होता है उसी तरह अब तक हम लोग भी छुट्टियों में आनन्द मानते रहे। लेकिन अब तो यह देश स्वतन्त्र हो रहा है। छुट्टियों में अपने समय को फिजूल नहीं खोना चाहिए। काम करने से ही कुछ लाभ होता है। छुट्टी होने से हम अपने आवश्यक काम थोड़े ही छोड़ देते हैं। क्या खाना, सोना, खेलना छोड़ देते हैं ? तो काम भी नहीं छोड़ना चाहिए। आज तुम जैसे विद्यार्थी यदि अपनी छुट्टियों में मिलकर खेड़ों (ग्रामों) में जा-जाकर खेती का काम सीखें और करें तो गरीबी दूर हो सकती है, प्रकृति के वातावरण में नई हवा मिलती है, शक्ति बढ़ती है, अनुभव और शिक्षा मिलती है। देश का लाभ होता है। रूस और जापान के विद्यार्थी ऐसा ही करते हैं। वे विद्यार्थी फिजूल खेलों तथा गाली-गलौज में समय नहीं खोते। वे कहते हैं 'देश की इज्जत में ही हमारी इज्जत है।' तुम जब साटोड़ा, पीपरी आदि जाते हो तब कैसा लगता है ? क्यों आता है न मजा ?

एक बात और। आज़ादी का मेहनत से सम्बन्ध है। आज़ाद आदमी को मेहनती होना चाहिए। तुम्हें अपना काम जैसे कपड़े धोना, साफ़-सफाई रखना, आदि काम अपने हाथ से ही करने का अभ्यास होना चाहिए। इससे आदमी किसी का मोहताज़ नहीं होता और कैसी भी गरीबी में सुखी रहता है।

मेहनत से शरीर भी स्वस्थ रहता है। बीमारी नहीं होती। सादे रहन सहन और ऊँचे विचार से आदमी की इज्जत होती है। अपनी जरूरतें कम करनी चाहिये। इससे परेशानियाँ घटती हैं।

इस तरह प्रत्येक बात में तुम्हें देश की भलाई का खयाल रखना चाहिए। इसी से अपना देश आज़ाद रह कर महान् बन सकेगा। लेकिन यदि तुम अपने सुख के लिए दूसरों को भूल जाओगे और हरएक आदमी अपने बारे में ही सोचने लगेगा तो हजार प्रयत्न करने पर भी हमारे नेता इस आज़ादी को नहीं टिका सकेंगे। इसलिए तुम्हें अपनी जिम्मेदारी को समझना चाहिए और अपने दोस्तों में ऐसे विचारों को फैलाना चाहिए।

'जय हिन्द!'

—रिषभदास के प्यार।